राजस्थान का सामाजिक जीवन

लेखक :

जगदीशसिंह गहलोत

एम. आर. ए. एस., एफ. आर. जी. एस. (लन्दन)

भूतपूर्व अधीक्षक, पुरातत्व एव संग्रहालय विभाग

बीकानेर व जोधपुर खण्ड, जोधपुर

सम्पादक :

देवेन्द्रसिंह गहलोत एम. ए.

भूमिका लेखक :

सुखवीरसिंह गहलोत

एम. ए., एल. एल. बी.,

यूनिक ट्रेडर्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर

प्रकाशक :
हिन्दी साहित्य मन्दिर,
जोधपुर

मूल्य :
25 00 रुपये

मुद्रक :
विजय प्रिण्टर्स,
जोधपुर (राज.)

राजस्थान का सामाजिक जीवन

विषय – सूची

सम्पादकीय निवेदन

मेरे पितामह इतिहासवेत्ता स्वर्गीय श्री जगदीशसिंहजी गहलोत के 'राजस्थान का सामाजिक जीवन' विषय सम्बन्धी लेख सन् 1929 की फरवरी व जुलाई के बीच दिल्ली के 'महारथी' मासिक मे छपे थे। इसके बाद उन्होंने 'राजपूताना का इतिहास' के प्रथम भाग के प्रारम्भ में राजस्थान के सामाजिक जीवन पर काफी लिखा। यह ग्रन्थ सन् 1937 मे प्रकाशित हुआ था। उन्होने और भी लेख इस विषय पर लिखे। उन्ही को आधार बनाकर यथासाध्य सशोधन कर तथा टिप्पणियाँ देकर उन्हें पुस्तक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक के सम्पादन और प्रकाशन की प्रेरणा मेरे पिता (श्री सुखवीरसिंहजी गहलोत) को श्री आदर्श किशोरजी सक्सेना आई ए. एस जिलाधीश बाडमेर ने दी। उन्होने 'महारथी' मे छपे उपर्युक्त लेखों को पढकर यह मत व्यक्त किया कि स्वतत्रता पूर्वकाल मे जितने निष्पक्ष, साहस व स्पष्ट रूप से तत्कालीन समाज का वर्णन श्री जगदीशसिंहजी ने किया, वह अत्यन्त प्रशसनीय है। आवश्यकता है कि ये लेख पुस्तकाकार मे शीघ्र छपे। मुझे भी यह लगा कि स्वतत्रतापूर्व राजस्थान के सामाजिक जीवन का मेरे पितामह ने जो वर्णन किया वह राजस्थान की वर्तमान पीढी के लिये ऐतिहासिक सामग्री के रूप मे पठनीय है। यों स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजस्थान मे अभूतपूर्व परिवर्तन आये— यहा की 19 रियासतों का विलयन होकर एक सुसगठित राज्य बना, राजाशाही की समाप्ति हुई, उत्तरदाई लोकतात्रिक सरकार बनी, जागीरदारी प्रथा समाप्त हुई, काश्तकारो के हित मे कई कानून बने, सामाजिक जागृति हुई और हम समाजवादी समाज के निर्माण हेतु प्रगति करते जा रहे हैं। इस प्रकार के तेजी से होने वाले परिवर्तनो की हवा मे हम भूलने लगे कि कुछ ही दशको पूर्व राजस्थान का समाज कैसा था, किन परिस्थितियो मे हमारे पिता व पितामह रहते थे और क्या उनका जीवन सुखद था? आज जब हम समाचार पढते है कि कुछ गावो मे अछूतो को स्वर्णों के कुवो से पानी भर लेने के कारण बुरी तरह से पीटा गया, कुछ गावो मे आज भी काश्तकारो से तिहाई हिस्से से आधे हिस्से तक हासिल लिया जाता है, पिछडी जाति के लोगो से बेगार ली जाती है, औरतो को सोना के गहने पहनने नही दिया जाता है, दुल्हे को घोडे पर चढने नही दिया जाता है अमुक कार्य को सफलता हेतु नर बलि दी जाती है आदि आदि, तब शायद काफी नव

युवको को यह पता ही नही होगा कि स्वतत्रतापूर्व काल मे तो ऐसी बातें सामान्य थी। यही विचारकर मैंने अपने पितामह के लेखो को सम्पादित कर प्रकाशित करने का प्रयास किया है।

मेरे पितामह द्वारा की गई साहित्य तथा इतिहास के प्रति सेवाग्रो का अभूतपूर्व सम्मान हो चुका है। समकालीन प्रमुख समाचार पत्रो व शोध पत्रिकाग्रो ने जो कुछ लिखा, वह पाठको की जानकारी के लिये बानगी के रूप मे लिखना पर्याप्त होगा। इसमे कोई सन्देह नही कि वह 'उच्च कोटि के विद्वान व इतिहासज्ञ थे' (दैनिक हिन्दुस्तान, 8 नवम्बर 1936)। उन्होने अपने इतिहास को 'यथा सम्भव, सजीव और रोचक बनाने का प्रयत्न किया था (उसमे) सहानुभूति और निष्पक्षता का अच्छा मिश्रण था (शासको के) जीवन की साधारण घटनाग्रो के अतिरिक्त उनके शासन सम्बन्धी सुधारो, प्रजा हित कार्यो तथा धर्म, साहित्य कला का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है। विवादग्रस्त विषया पर प्रमाणिक, ऐतिहासिक साधनो के ग्राधार पर प्रकाश डालने का अच्छा प्रयत्न किया था' (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अक्टुबर 1941, पृष्ठ 245) राजस्थान और राजस्थानी के लिये उन्हे अगाध प्रम था। उन्होने एकीकृत राजस्थान प्रान्त के लिये माग सन् 1947 मे ही की थी (नवभारत टाइम्स, 16 4-1947) और उन्होने सन् 1925 मे ही कहना आरम्भ कर दिया था कि 'राजस्थान की उन्नति जैसी राजस्थानी भाषा के द्वारा की जा सकती है वैसी हिन्दी के द्वारा नही हो सकती है' (तरुण राजस्थान, 21 फरवरी सन् 1925 पृष्ठ 9)। प्रसन्नता की बात है कि अब राजस्थान प्रान्त बन गया है और राजस्थानी को शिक्षा मे उचित स्थान दिया जाने लगा है।

श्री जगदीशसिंहजी गहलोत के गौरव ग्रन्थ राजपूताना का इतिहास' की समीक्षा करते डा० पी० के० गोडे ने लिखा था— 'यह कहने मे कोई सकोच नही है कि ऐसा गहन अध्ययन पूर्ण ग्रन्थ जिसमे राजपूतो की अनेक सामाजिक और आर्थिक समस्याग्रो पर नूतन प्रकाश डाला गया है, लेखक को स्वत ही गौरव प्रदान कर देता है। इसको पढकर प्रत्येक पाठक अपने मे उस राजपूत जाति के पुनरुत्थान की नई उमगे उत्पन्न किये बिना नही रह सकता, जिस पर भावी राजपूताने का गौरव निर्भर है' (न्यू इण्डियन एंटीक्वेरी, 7 मई 1940)। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० ईश्वरीप्रसाद ने लिखा था— इस पुस्तक के गहन अध्ययन से राजपूताने की जनता की आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक जीवन की बहुत सी बातें

ज्ञात होती है। एक साधारण पाठक, जो राजपूताना के लोगों के जीवन के सम्बन्ध मे बहुत कम जानकारी रखता है, यह पुस्तक न केवल उसके ज्ञान मे वृद्धि करेगी अपितु उस (वीर गाथा काला) के सम्बन्ध मे, जिसमे बहुत से वीरतापूर्ण कार्य हुए हैं और जो अनन्त समय तक स्वाभिमान का विषय रहेगा, दिलचस्पी पैदा करती रहेगी, (बॉम्बे क्रानिकल, 17 दिसम्बर 1940)। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त मासिक पत्र 'माडर्न रिव्यू', कलकत्ता ने भी लिखा था—

'भारतीय इतिहास के साधारण विद्यार्थियों तथा हिन्दी भाषा भाषी जनता के लिए राजपूत राज्या के इतिहास की एक पुस्तक की अत्यन्त आवश्यकता थी। यद्यपि म० म० प० गौरीशकर ओझा का इस सम्बन्ध में, स्मरणीय ग्रन्थ 'राजपूताना का इतिहास' प्रकाशित हो चुका है परन्तु वह साधारण जनता की दृष्टि से अत्यन्त आलोचनात्मक, विद्वत्तापूर्ण एव वृहत है। अत हम श्री जगदीशसिह गहलोत को राजपूत रियासतों के इतिहास के लेखन कार्य मे सफलता प्राप्त करने के उपलक्ष मे बधाई देते है।

'श्री जगदीशसिह को न केवल राजपूतो ही से बल्कि भील, मीणा, मेर, जाट तथा गूजर आदि प्राचीन बहादुर जातियो से भी सहानुभूति है। देशभक्त होते हुए भी, लेखक देश के बीते हुए समय का सुनहला चित्र ही पाठक को दिखाकर अपने आपको धोखा नही देता बल्कि राजपूतो की वर्तमान गिरी हुई दशा तथा उस प्रान्त के पशु पालको और किसानों की गिरी हुई आर्थिक अवस्था को भी सामने लाता है। उस स्थान के जागीर-दारो को स्वत. न कमाई हुई आमदनी को व्यर्थ के ऐशोआराम, शराब, स्त्री तथा अफीम ने निगल लिया है। उनकी तलवारे म्याना मे पडा जग खा रही है या ज्यादा से ज्यादा विशेष अवसरो पर बलिदान के बकरो की गर्दन पर अजमाई जाती है। मध्यकालीन भारत का वीर राजपूत आज अध पतन का एक नमूना और एक दु ख पूर्ण खिलौना है। पजाव के उन्नति करते हुए किसानो के मुकाबले मे राजपूताना के किसानो की आर्थिक एव सामाजिक दशा अत्यन्त दु.खपूर्ण है। भूमि रहित मजदूर-किसानों की दयनीय दशा अत्यन्त शोचनीय है। केवल पूजीपति तथा ऊचे ओहदेदार ही वहा ऐशो-आराम करते है। अधिकाश मे वहा के किसान अपनी भूख बचे हुए निकृष्ट धान से बुझाते है, जब कि बौहरे लोग गेहूँ का आनन्द लेते है। वहा कहावत है 'कूडो करमा खाय, गेहू जीमे बाणिया। सनातनियो की धार्मिकता के नाम पर ब्राह्मण भी गुलछर्रे उडाते हैं।

'लेखक का यह साहित्यिक चातुर्य्य प्रशसनीय है कि उसने घटनाओं को बहुत सी उपयुक्त एव प्रसिद्ध कहावतो से गूँथ कर सूचनात्मक, विस्तृत एव दिलचस्प बनाने मे सफलता प्राप्त की है।

'लेखक ने साधारण हिन्दी पाठको के लिये अपनी पुस्तक को उपयोगी बनाने के लिये काफी परिश्रम किया है और पर्याप्त मात्रा मे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहायक ग्रथो की सूची दी है जिनसे उन्होने सामग्री एकत्रित की है। लेखक की पुस्तक स्वय ही जनता की जानकारी मे आने पर प्रशसा प्राप्त करेगी। हमे यह आशा है कि गहलोतजी अपने काय को एक देशी राज्य के आपत्तिजनक क्षेत्र म बैठे राजपूताने के प्राचीन इतिहासज्ञो मुहणोत नैणसी और कविराजा श्यामलदास की तरह दुर्भाग्यशाली बने बिना जारी रखगे।' (अनुवादित) फरवरी सन् 1941 पृ 214।

श्री जगदीशसिहजी के विषय म 'अजमेर के नवज्योति साप्ताहिक ने भी लिखा था।'— (राजपूताना का इतिहास) ग्रथ म उनके ज्ञान और परिश्रम का अच्छा परिचय मिलता है यह (ग्रथ) सजीव रोचक और उपयोगी है। इसमे राजवशो और शासक जातियो क अलावा जन-साधारण की भाषा, भेष रीतिरिवाज और सामाजिक धार्मिक आदि स्थितियो पर भी प्रकाश डाला गया है। देश प्रम की भावना क दशन जगह जगह होत है। गहलोतजी ने सभी दिशाओ मे इस ग्रथ को ऐसी सामग्री से भर दिया है कि उनसे रियासतो की मोजुदा अवस्था वहा के निरकुश शासन राजाओ की फिजुलखर्ची प्रजा को कगाली, दास प्रथा आदि बुराइयो पर अच्छा प्रकाश पड गया है। जागरूक पाठक को इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजपूताना की रियासतो के राजा प्रजा से कितना धन लेते है और उसका कितना कम हिस्सा प्रजा की भलाई पर खच करते है। (साप्ताहिक नवज्योति अजमेर 2 अक्टूबर 1939)। इस प्रकार के अनेक मत मन्तव्य, आलोचना निबन्ध आदि प्रकाशित हो चुके है।

ऐसे सिद्धहस्त लेखक एव शोध पडित की कृति पुन प्रकाशित करते हर्ष होता है और यह आशा की जाती है कि यह कृति तत्कालीन राजस्थानी समाज के विषय म जानने के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक सम्पादन का यह मेरा प्रथम प्रयास है। इस कारण इसम कुछ गलतिया रह गई है। आगामी सस्करण म इसे कई और सशोधनो एव टिप्पणियो के साथ प्रकाशित करने की चेष्टा करूगा।

देवेन्द्रसिंह गहलोत

भूमिका

मेरे पिता स्व० श्री जगदीशसिंहजी गहलोत ने आज से लगभग 45 वर्ष पूर्व राजस्थान के सामाजिक जीवन पर जो कुछ लिखा वह बहुत ही तथ्यपूर्ण और रुचिकर है। अप्रेल 1973 मे जब श्री आदर्शकिशोर सक्सेना आई ए एस जिलाधीश बाडमेर ने मुझसे ऐसी पुस्तक के बारे मे जानकारी चाही जो स्वतन्त्रता-पूर्व के राजस्थानी जनजीवन के बारे मे सही जानकारी दे सके तब मैंने उनको अपने पिताश्री द्वारा लिखित वे लेख दे दिये जो "महारथी" मासिक मे फरवरी 1929 से जुलाई 1929 (अक 41 से 46) के बीच क्रमश छपे थे। इन्हे पढकर वह गद्‌गद् हो गये और मुझे प्रोत्साहित किया कि उन लेखो को पुस्तक रूप मे प्रकाशित किया जाय। मैं उस समय से निरन्तर आद्यावधि अकाल, अतिवृष्टि बाढ आदि के कारण सरकारी कार्य मे इतना व्यस्त रहा कि मैं इन लेखो को वापस पढ नही सका लेकिन मैंने यह कार्य मेरे पुत्र चि० देवेन्द्रसिंह को सौंप दिया। उसने आवश्यक सशोधन तथा टिप्पणिया लिखकर व सम्पादन कर मुद्रण हेतु दे दिया। दीपावली के बाद राजकीय कार्यों से कुछ सास लेने के क्षण मिले तब सभी लेखो को मुद्रित होकर पुस्तक रूप मे देखा। चि० देवेन्द्रसिंह का यह प्रथम प्रयास था। अत टिप्पणियो तथा छपाई आदि मे कुछ कमी अवश्य रह गई है लेकिन फिर भी उसका प्रयास अच्छा रहा। मेरे पिता श्री के अध्ययन के मुख्य विषय थे– राजस्थान का इतिहास, राजस्थान का समाज और राजस्थान का लोक साहित्य। मैंने भी राजस्थान के इतिहास तथा राजस्थान के समाज की दिशा मे कुछ अध्ययन किया है। चि० देवेन्द्रसिंह का राजस्थान के समाज पर कुछ अध्ययन करना इसमे दृष्टीगोचर होता है, यह मेरे लिये सतोष की बात है।

मैं कई बार सोचता हूँ कि आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व राजस्थान के लोगो की जैसी दशा थी उसमे अब कितना परिवर्तन आगया है। ये परिवर्तन क्यो और कैसे आये ? इन परिवर्तनों को प्रभावित करने वाली प्रमुख घटनाये और प्रवृतिया क्या क्या थी ? इनका लेखा जोखा लगाने के लिये काफी शोध और अध्ययन करने की आवश्यकता है। मेरे जैसे व्यक्ति के लिये, जो रात-दिन सरकारी कार्य मे ही व्यस्त रहता है, अभी सम्भव नही कि इस विषय पर पूर्ण रूप से लिख सकू फिर भी दिशा सकेत करना अनुचित नही होगा।

पिछली अर्ध शताब्दी मे राजस्थान के सामाजिक जीवन में आमूल चूल परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनो का मुख्य कारण है — पिछले 50 वर्षों मे न केवल राजस्थान, बल्कि भारतवर्ष मे होने वाले राजनैतिक आन्दोलन तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति। इन राजनैतिक आन्दोलनो के कारण लोग अपने मूल अधिकारो की माग करने लगे और अपने अधिकारो को प्राप्त करने के योग्य बनाने लगे। सन् 1947 मे स्वतन्त्र भारत का सूर्य उदय हुआ। राजस्थान के देशी राज्य सरदार पटेल की रक्त विहीन क्रांति की लपेट मे आये। मिट्टी की तरह सैकडो वर्षो की सुदृढ सामती प्राचीरे ढहने लगी। सामन्ती शासन समाप्त हुए और यह सम्पूर्ण भूखण्ड-राजस्थान के नाम से सगठित होकर लोकतन्त्र की सास लेने लगा।

इस प्रकार देशी राज्यो, उनकी सीमाओ, उनके दरबारी तौर तरीको, जाति-पाति के बन्धनो आदि का सदा के लिये लोप हो गया। जन्मजात वर्ण व्यवस्था से उत्पन्न विष वेल और उसके कुफलो का नाश होना आरभ हुआ। राजस्थान तथा केन्द्रीय शासन ने अनेक नये अधिनियम विधिपूर्वक लागू कर समाज के निम्नस्तरो तथा पिछडी जातियो को समान अधिकार दिलाये। कई दशाओ मे ऐसे वर्गो को विशेष सुविधाये प्रदान की। इसमे ध्येय यही रहा कि एक नये समाज का निर्माण हो जिसका सकल्प भारत के सविधान मे किया गया है।

राजस्थान सन् 1949 की मार्च तक एक ही प्रशासन के अन्तर्गत न होकर अलग अलग रियासतो मे बटा हुआ था। यहा तक कुल 19 रियासते थी। इन रियासतो मे सबसे प्राचीन मेवाड रियासत था जिसके पूर्वजो की वीरता, साहस और स्वतन्त्रता प्रेम की गाथाये भारत भर मे प्रसिद्ध है। इस शताब्दी मे जब भारत मे स्वतन्त्रता आन्दोलन चले तब मेवाड के महाराणा सागा व महाराणा प्रतापसिंह, आदि से ही आन्दोलनकारियों ने प्रेरणा ली थी। मेवाड के अलावा अन्य महत्वपूर्ण रियासते थी– मारवाड, जयपुर, बीकानेर, कोटा व बून्दी। यहा के वीरो ने कई युद्धो मे भाग लिया व भारत के इतिहास को प्रभावित किया। इन 19 रियासतो से घिरा 1, 32, 152 वर्ग मील का क्षेत्र तब राजपूताना कहलाता था। राजपूतो के अत्यधिक प्रभाव के कारण ही यह प्रान्त राजपूताना कहलाता था अन्यथा राजपूतो की यहाँ कोई विशेष सख्या नही थी। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह प्रान्त इगलैण्ड, इटली, आस्ट्रिया व हगरी से भी बडा था।

राजस्थान की जनसख्या 2,57,65,806 है जिनमे 1,22,81,423 स्त्रिया हैं। यहा के 33,305 गावो मे 2,12,045 मनुष्य रहते है। स्पष्ट है कि यहा की ज्यादातर जनता (82 प्रतिशत) ग्रामीण है। यहा के 157 नगरो व कस्बो मे केवल 45,43,761 बसते हैं। एक लाख से ज्यादा जनसख्या के नगर जयपुर, जोधपुर, अजमेर, कोटा, बीकानेर, उदयपुर और अलवर है।

राजस्थान मे हिन्दुओ का बहुमत है। यहा विभिन्न धर्मावलम्बियो की सख्या तथा प्रतिशत इस प्रकार है— हिन्दू 2,30,93,895 (89 63 प्रतिशत) मुसलमान 17,78,275 (6 90 प्रतिशत) जैन 5,13 548 (1 96 प्रतिशत) सिक्ख 3 41,182 (1 33 प्रतिशत) व बौद्ध 3,642 (02 प्रतिशत) है। सबसे ज्यादा प्रतिशत हिन्दुओ का डूगरपुर मे (95 40) मुसलमानो का जैसलमेर मे (24 42) जैनो का जालोर मे (5 20) सिक्खो का गगानगर मे (19 19) व ईसाइयो का बासवाडा मे (0 75) है। सबसे कम प्रतिशत हिन्दुओ का जैसलमेर मे (74 92) मुसलमानो का सिरोही मे (2 48) जैनो का गगानगर मे (21) सिक्खो का सीकर, नागौर व बाडमेर मे (01) व ईसाइयो का सीकर व जालोर मे (01) है। अनुसूचित जातियो व जनजातियो की जन सख्या क्रमश 40,75,580 व 31,25,506 है व प्रतिशत क्रमश 15 82 व 12 13 है। अनुसूचित जातियाँ गगानगर, भरतपुर व जयपुर मे ज्यादा हैं। इसी प्रकार अनुसूचित जन जातिया उदयपुर, बासवाडा व डूगरपुर मे ज्यादा हैं। अनुसूचित जातियो व अनुसूचित जन जातियो के उत्थान के लिये पिछले 25 वर्षों मे काफी कानून बने व प्रशासनिक कारवाइयाँ की गई लेकिन उनकी स्थिति मे विशेष परिवर्तन नही आया है। इसका मुख्य कारण राजनैतिक दलो, सरकारी कार्यालयो सभाओ, सस्थाओ आदि मे कई जातिगत विलय बने होना है। इनका जब तक तोडा नही जायेगा तब तक इन जातियो का उत्थान होना कठिन है। इन जातियो की आर्थिक स्थिति ठीक करना भी अत्यन्त आवश्यक है। इनका आर्थिक पिछडापन ही इन्हे राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक रूप से पिछडा हुआ बनाये रखता है।

राजस्थान बनने के पूर्व सन् 1941 मे अन्तिमबार जनगणना हुई थी तब द्विजो का प्रतिशत 18, काश्तकारो व पशु पालको का 27 6 नौकरी

पेशा व कारीगरो का 5 5 अनुसूचित जातियो का 13 7 अनुसूचित जन जातियो का 11·2 व मुसलमानो का 5 7 था। जब जातिवार जनगणना नही होती है लेकिन अब काम करने वालो के हिसाब से होती है। ग्रामीण क्षेत्रो व नागरिक क्षेत्र मे व्यवसाय अनुसार प्रतिशत इस प्रकार है—

धन्धे	गावो का प्रतिशत	नगरो का प्रतिशत
काश्तकार	41	4
कृषक मजदूर	22	4
पशुपालन, आखेट, खनिज कार्य आदि	9	5
कुटिर उद्योग	3 1	2 5
कुटीर उद्योग के अलावा उद्योग	3	3 8
निर्माण कार्य	3	1 8
परिवहन आदि	2	2 8
व्यापार व वाणिज्य	8	4 8
अन्य सेवा मे	2 0	9 6
काम न करने वाले (बेकार सम्मलित)	49 1	69 8

यहा के लोगो का मुख्य धन्धा कास्त है लेकिन पानी व अच्छी उपजाऊ भूमि की कमी होने कारण कास्तकार भली प्रकार अपनी जीविका नही चला सकते है। इसी प्रकार परिवहन तथा सचार व्यवस्था की कमी के कारण यहा उद्योग नही लग सके है। यो यहा के उद्योगपति जो अन्य प्रान्तो मे मारवाडी के नाम से जाने जाते हैं राजस्थान के बाहर उद्योग लगाने मे काफी आगे रहे हैं। भारत के सुप्रसिद्ध उद्योगपति–बिडला डालमीया, गोयनका, तापडीया पौद्दार, सिहानीया, बागड, शाहू जैन आदि राजस्थान के ही निवासी है।

शिक्षा क क्षेत्र मे राजस्थान काफी पिछडा हुआ है। स्वतन्त्रता के पूर्व सन् 1941 की जनगणना के समय साक्षरो का प्रतिशत केवल 5 51 था तथा राजस्थान के निर्माण के बाद सन् 1951 की जनगणना क समय प्रतिशत 8 95 तक ही पहुँचा था। अब यह प्रतिशत 19 07 तक पहुँच पाया है। यो पुरूषो का प्रतिशत 26 74 व महिलाओं का केवल 8 46 है। सबसे ज्यादा साक्षर अजमेर जिले मे 30 30 प्रतिशत तथा सबसे कम साक्षर

जालोर जिला मे 10 13 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रति रात केवल 13 85 ही है। वहा साक्षर स्त्रिया केवल 4 03 प्रतिशत है। राजस्थान मे अब 3 विश्वविद्यालय, 137 व्यवसायिक कॉलेज, 75 सामान्य शिक्षा के कॉलेज, 43 विशेष शिक्षा के कॉलेज, 872 उच्च माध्यमिक शालायें, 1858 माध्यमिक शालायें तथा 19,180 प्राथमिक पाठशालायें है। इनमे लगभग बीस लाख लडके व पाच लाख लडकिया पढती है। शिक्षा पर अब लगभग दो करोड रुपये खर्च किये जाते है। स्पष्ट हैं कि स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा के क्षेत्र मे काफी प्रगति हुई है। लेकिन अभी भी बहुत कुछ करना शेष हैं।

राजस्थान राजाशाही का गढ रहा हैं। इन राजाओ की रियासतो मे वे सब बुराईया मौजुद थी जो एक व्यक्ति के निरकुश शासन मे हो सकती है। हर कोर्ट बटलर के शब्दो मे "यहा वे रियासते हैं जहा पितृतत्र या अर्द्ध सामन्त तत्र का बोलाबाला हैं, जिससे इतिहास के मध्ययुग का रूप आँखो के सामने आ जाता है और वे रियासते भी है जहा सोलह आने प्रशासन कायम है।" यहा राजा का आदेश सर्वोपरि होता था। कानून को कोई जानता ही नही था। जोभी राजा ने कह दिया उसका सभी को पालन करना पडता था। जनता की प्रतिनिधि सस्थाओ का यहा नाम भी नही था। पिछले 30 वर्षो म कुछ रियासतो— बीकानेर, जयपुर, जोधपुर आदि मे प्रतिनिधि सस्थाओ का निर्माण हुआ लेकिन वे पूर्णतया शक्तिहीन थी। उनको कानून बनाने, कर लगाने या विकास के कार्य करने के कोई अधिकार नही थे। राजाओ ने केवल उपरी दिखावे के लिये इनका निर्माण कर दिया था। ढहती दीवारो पर सफेदी पोतने से क्या लाभ होता है? यह स्वतन्त्रता प्राप्त होने ही सबको पता लगगया।

राजस्थान का 60 7 प्रतिशत भाग जागीरदारी प्रथा के अतर्गत था। उदयपुर, जोधपुर व बीकानेर मे तो यह प्रतिशत और ज्यादा था। जागीरदार भूमि के लगान का कुछ हिस्सा (रेख) ही देते थे। यह हिस्सा (रेख) जागीर देने के समय तय किया जाता था जिसका वास्तविक लगान से कोई सबध नही था। जागीरदार अपनी जागीर के गावो मे मनमाना लगान वसूल करते थे। लगान देते हुए भी काश्तकार सुरक्षित नही थे। जागीरदार मनचाहे जब उन्हे बेदखल कर देते थे। लगान के अलावा काश्तकारो को बेठ बेगार भी निकालनी पडती थी तथा कई लागें देनी पडती थी। लागें तथा बेगार काश्तकारो के अलावा व्यापारियो तथा भूमिहीनो को भी देनी पडती थी। इस प्रकार से जागीरदार अपनी जागीर मे राजाओ से

कम शक्ति नही रखते थे। यो जागीरदारो के अधिकारो को कोई कानूनी मान्यता नही थी। शासक को अधिकार था कि वह जब चाहे तब जागीर का पुनर्ग्रहण कर सकता था- तथा दूसरे को हस्तान्तरित कर सकता था। जागीरदार को महाराजा द्वारा सैनिक व आर्थिक सहायता मागने पर देनी पड़ती थी तथा कभी कभी व्यक्तिगत सेवा हेतु उपस्थित होना पडता था।

राजस्थान की ज्यादातर जनता कृषि पर निर्भर थी लेकिन काश्तकार के अधिकार नाममात्र थे। काश्तकारो को भूमि पर मालिकाना अधिकार कानून से नही दिया हुआ था। जागीरी गावो मे तो वह जागीरदार द्वारा मनचाहे जब बेदखल कर दिया जाता था। उसकी भूमि पर लगान भी मनचाहे जब बढा दिया जाता था। लगान के अलावा उसे कई प्रकार की लाग बागें व बेगार देनी पडती थी। इनके कारण काश्तकार तग आ गये थे और उन्हे विवश होकर आन्दोलन करने पडे। इन आन्दोलनो के कारण पिछले वर्षों मे काश्तकारो के हित के लिये कुछ कानून बनाये गये लेकिन वे भी उनका ज्यादा भला नही कर सके। काश्तकारो मे असन्तोष बराबर बना रहा। इन आन्दोलनो का विशेष महत्व है क्योंकि इन्होने न केवल काश्तकारों बल्कि अन्य वर्गों के भी सामाजिक जीवन को काफी प्रभावित किया। इनके कारण विभिन्न वर्गों व जातियो के स्त्री-पुरुष एक दूसरे के ज्यादा ही सम्पर्क मे आये। उनमे राष्ट्रीय चेतना आई और जनता अपने मूल अधिकारो के प्रति जागरूक हुई। इन राजनैतिक आन्दोलनो के कारण रियासतो को विवश होकर स्कूलो, अस्पतालो, सडकों, बाधो आदि का निर्माण करना पडा लाग बाग व बेगार बन्द करने को कानून बनाने पडे व उद्योग धन्धे खोलने पडे। मेरे पिताश्री ने अपनी लेखमाला के अन्त मे यही बाते अप्रत्यक्ष रूप मे बतानी चाही था। उस समय राजनैतिक आन्दोलन आरम्भ हो गये थे लेकिन व तत्कालीन परिस्थितियो (सरकारी सेवामे होने) मे केवल इशारा करके ही रह गये। राजस्थानी समाज मे तब जो राजनैतिक चेतना आई तथा जो आन्दोलन हुए उनका सक्षेप मे विवरण इस कारण अब देना उचित होगा ताकि पाठक तेजी से बदलते सामाजिक जीवन को आक सके।

राजस्थान मे राष्ट्रीय जागृति रूस-जापान युद्ध और बग भग के बाद ही आरम्भ हुई लेकिन रियासती शासन के विरुद्ध असतोष की ज्वाला प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के वर्ष सन् 1918 मे, राजपूताना-मध्यभारत सभा स्थापित हो जाने पर प्रज्वलित हुई। उस समय रियासती

शासन के विरुद्ध आन्दोलन करने वालो मे अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह बारहठ, राव गोपालसिंह, दामोदरलाल राठी व विजयसिंह पथिक अग्रणीय थे। विजयसिंह पथिक ने बिजोलिया का सुप्रसिद्ध किसान आन्दोलन (1913 – 1922) बडी कुशलता से चलाया। यह आन्दोलन बेगार, लागबाग, अत्याधिक लगान आदि से तग आकर ठिकाने के विरुद्ध चलाया गया था। इस आन्दोलन मे पथिक के अलावा रामनारायण चौधरी व माणकलाल वर्मा का भी महत्वपूर्ण भाग रहा। यह आन्दोलन राजस्थान स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास मे बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। इसी कडी मे बेगू (1921-1922) व बून्दी (1922) के आन्दोलन माने जा सकते है। इनके कारण सामन्तशाही को किसानो के सामने झुकना पडा। इन आन्दोलनो के कारण देहाती स्त्रियो मे भी कुछ जागृति आई। वे भी पुरुषों के साथ सत्याग्रह मे सम्मिलित हुई। पुरुषों मे जो राजनैतिक जागृति आई उसके फलस्वरूप विभिन्न रियासतों मे नागरिक अधिकारो को प्राप्त करने हेतु सेवा समितिया, हितकारिणी सभायें, चल पुस्तकालय आदि स्थापित हुए तथा प्रशासन और सरकारी अधिकारियो की स्वेच्छारिता के विरुद्ध आवाज उठाने लगे। सबसे महत्वपूर्ण सगठन राजस्थान सेवा सघ था जो सन् 1921 मे वर्धा मे स्थापित हुआ था और जिसका मुख्य उद्देश्य राजस्थान की रियासतो मे ब्रिटिश हस्तक्षेप का विरोध करना तथा राजाओ और जागीरदारो की दमनकारी नीतियो से सिधी टक्कर लेना था।

जोधपुर मे तब ही जयनारायण व्यास का आविर्भाव हुआ। उन्होंने रियासतो के स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध काफी सघर्ष किया और इस कारण वह रियासत से निर्वासित कर दिये गये। रियासत के बाहर ब्यावर, अजमेर, बम्बई आदि स्थानो मे रह कर भी उन्होने राजाशाही के विरुद्ध बराबर आन्दोलन किये। उसी समय पहाडी क्षेत्रो मे भीलो के लिये अधिकारो की लडाई 'मेवाड के गाधी" मोतीलाल तेजावत ने (1922–1929 मे लडी। उनके नेतृत्व मे मारवाड, सिरोही, मेवाड, डूगरपुर, ईडर आदि के भीलो को सगठित होकर रियासतो सरकारो और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलन किय। भील तेजावत को अपना मसीहा मानते थे। इस भील आन्दोलन को सरकार ने अपनी सत्ता के लिये चुनोती समझा और इस कारण निर्मम दमन चक्कर चला कर कुचल दिया। भील तब तो शात हो गये लेकिन अपने अधिकारो के प्रति जागरूक हो गये।

सन् 1925 मे अलवर रियासत मे भी काश्तकारो ने बढे लगानो के

ने आग बबुला होकर किसानो को पाठ पढाने को, उनके गाव नीमूचाणा मे सेना भेज दी। सेना ने अन्धाधुन्ध गोली चलाकर लगभग 95 आदमियो को मारडाला तथा गाँव मे आग लगा दी जिससे 355 मकान जलकर नष्ट हो गये। इस काण्ड को देशो रियासतो का "जलियावाला बाग" काण्ड कहा जाता है। महात्मा गाधी ने इस काण्ड पर अपने पत्र मे बहुत ही कडी टिप्पणी लिखी थी।

सन् 1924 मे जयपुर रियासत के सीकर ठिकाने के काश्तकारो पर अत्याधिक लगान लगा दिया गया। इस ठिकाने को वार्षिक लगान लगभग 9 5 लाख रुपये मिलता था लेकिन इसमे से 4 लाख जागीरदार अपने निजि खर्चों मे लगा देता था। काश्तकारो के हित मे कोई विकास कार्य नही किया जाता था। काश्तकारो ने जब इस बढे लगान का विरोध किया तब ठिकाने ने काश्तकारो को क्रुरता से दबाना प्रारम्भ किया। आन्दोलन और तेज हो गया और इस मामले को केन्द्रीय विधान सभा और ब्रिटिश ससद तक मे उठाया गया। आखिर मई, 1925 मे जागीरदार व किसानो के बीच समझौता हुआ जिसके अनुसार किसानो ने फसल के अनुमान से लगान देना स्वीकार किया। जागीरदार ने फिर भी समझौते का पालन ईमानदारी से नही किया। इस कारण किसानो मे असतोष चलता ही रहा। सन् 1935 मे किसान आन्दोलन की सफलता के लिये एक जाट महायज्ञ आयोजित किया गया जिसमे लगभग 80 000 किसानो ने भाग लिया। यह देखकर सरकार ने सैकडो किसानो को जेल मे बन्द कर दिया। खूडो और कुन्दा गाव मे पुलिस ने गोली भी चलाई जिसमे 10 व्यक्ति घटना स्थल पर ही मर गये और लगभग 100 व्यक्ति घायल हो गये। कई स्त्रियाँ भी घायल हुई। आन्दोलन दबा दिया गया लेकिन किसानो मे अपूर्व जागृति आ गई।

बीकानेर मे भी महाराजा के निरकुश प्रशासन के विरुद्ध कुछ लोगो ने सन् 1932 मे आवाज उठाई तो उसने 8 व्यक्तियो को गिरफतार कर उनके विरुद्ध मुकदमा चला दिया। यह मुकदमा बीकानेर षडयत्र काण्ड के नाम से जाता जाता है। एक अभियुक्त के मुखबिर हो जाने पर शेष सात अभियुक्तियो को छ माह से लेकर तीन वर्ष तक के कारावास की सजा दे दी गई। इस निर्णय की भारत भर के समाचार पत्रो ने कडी आलोचना की। स्पष्ट हो गया कि राजा महाराजा अपने विरुद्ध कुछ भी कहना व सुनना नही चाहते है।

जोधपुर मे नागरिको का भाषण देने व लेख लिखने की भी स्वतन्त्रता नही थी तथा प्रशासन मे भ्रष्टाचार का ज्यादा ही बोलबाला था। इस कारण सन् 1925 मे जयनारायण व्यास के नेतृत्व मे जोधपुर सरकार की निरकुश व्यवस्था के विरूद्ध आन्दोलन किया गया। सन् 1929 मे जयनारायण व्यास, आनन्दराज सुराणा भवरलाल सर्राफ आदि ने सार्वजनिक सभायें कर राज्य सरकार व प्रशासन की कटु आलोचना की। इस कारण इनको गिरफ्तार कर लिया गया और इन्हे तीन से पाच वर्ष तक के कारावास की सजा दे दी गई। इस निर्णय का जब जनता ने विरोध किया तब उनके जलूस पर लाठी प्रहार किये गये जिससे कई व्यक्ति घायल हो गये तथा कई गिरफ्तार कर लिये गये।

ये कुछ बडी घटनाये है। अन्यथा कोई भी रियासत, उन लोगो को जो यथास्थिति को चालू रहने नही देना चाहते थे दमन करने मे नही चुकी। इन दमनकारी नीतियो का सामना करने हेतु कई राजनैतिक व सामाजिक सस्थायें उठ खडी हुई। इनमें सबसे महत्वपूर्ण हरिजन सेवक सघ तथा वनवासी सेवा सघ थे। हरिजन सेवक सघ घनश्यामदास बिडला की अध्यक्षता मे सगठित हुआ था तथा यह राष्ट्रीय स्तर की सस्था थी। राजस्थान मे इसकी शाखा के अध्यक्ष हरविलास शारदा थे। इस सघ के प्रयत्नो से शीघ्र ही प्रात मे लगभग 50 हरिजन सेवक समितिया बन गई जिन्होने लगभग 125 पाठशालाये स्थापित कर दी। इनमें लगभग 3000 छात्र पढने लगे। सघ के प्रचार के कारण सैकडो हरिजनो ने शराब पीना छोड दिया और मुर्दा मास न खाने की प्रतीज्ञा ले ली। हरिजनो के लिये कई जलाशय भी बनवाये गये। एक और सस्था गाधी सेवा सघ थी जिसकी राजस्थान शाखा के प्रधान सगठन मन्त्री हरिभाऊ उपाध्याय थे। राजस्थान मे सेवक मण्डल अलग था जिसके अध्यक्ष रामनारायण चौधरी थे। इसके अन्य प्रमुख कार्यकर्त्ता नयनूराम शर्मा, चन्द्रभानु रामसिंह माणकलाल वर्मा शोभालाल गुप्त आदि थे। यह मण्डल भी हरिजनो के उत्थान का कार्य करता था। इसी के फलस्वरूप सन् 1935 मे डूगरपुर के सागवाडा स्थान पर भील सेवा आश्रम स्थापित किया गया। इसके द्वारा डूगरपुर व बासवाडा के भीलो म काफी जाग्रति लाई गई। उनम काफी सामाजिक सुधार किये गये।

महात्मा गाधी द्वारा सन् 1930 मे चलाये नागरिक अवज्ञा आन्दोलन का प्रभाव राजस्थान पर भी पडा और यहा भी विभिन्न राज्यो मे प्रजा

मण्डल स्थापित कर जनता ने आन्दोलन आरम्भ कर दिये। ये प्रजा मण्डल अलग अलग रियासतो मे अलग अलग वर्षों मे स्थापित हुए, यथा सन् 1931 मे जयपुर मे, सन् 1934 मे मारवाड (जोधपुर) मे, सन् 1935 मे सिरोही मे, सन् 1938 म उदयपुर, धोलपुर, कोटा, बून्दी, अलवर व शाहपुरा म, सन् 1939 मे भरतपुर मे सन् 1940 मे बासवाडा मे सन् 1942 मे बीकानेर मे, सन् 1945 मे डूगरपुर मे और सन् 1948 मे किशनगढ मे। सन् 1937 मे जयपुर प्रजा मण्डल का पुनर्गठन हुआ तथा सन् 1938 म मारवाड प्रजामण्डल का नाम मारवाड लोक परिषद् कर दिया गया। इन प्रजा मण्डलो की स्थापना का सभी रियासती सरकारो ने विरोध किया तथा इन्हे तत्काल अवैध घोषित कर दिया। इस कारण रियासतो मे आन्दोलन भी चले।

इन आन्दोलनो के आरम्भ मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने कोई सहयोग नही दिया। काग्रेस यह नही चाहती थी कि वह रियासतो के मामले मे उलझे। महात्मा गाधी तक का रियासतो के प्रति रूख पूर्णतया अहस्तक्षेप का था। इस कारण रियासतो के प्रजामण्डलो को अकेले ही आन्दोलन चलाने पडे। काग्रस ने रियासतो के मामले मे तब ही हस्तक्षेप करने का सोचा जब भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तगत रियासतें भारतीय सघ के विधान मण्डल मे भाग लेने का विचार करने लगी। सन् 1938 मे हरिपुरा अधिवेशन मे काग्रेस ने अपना यह लक्ष्य बतलाया कि वह रियासतो मे भी उसी राजनतिक सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के लिये लड रही है जिसके लिये शेष भारत मे, और वह रियासतो को भारत का अविभाज्य अग समझती है परन्तु उसने यह स्पष्ट कर दिया कि अभी वह इस स्थिति मे नही है कि स्वयम् रियासती जनता को मुक्ति दिला सके। काग्रेस ने रियासती जनता को यह सलाह अवश्य दी कि स्वतन्त्रता के लिये सघर्ष का भार उन्हे स्वयम् ही उठाना चाहिये। बाद मे महात्मा गाँधी ने राजाओ का चेतावनी भी दी कि यदि राजा लोग उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की माग को स्वेच्छा से स्वीकार नही करेंग तो काग्रेस अहस्तक्षेप की नीति को छोड सकती है। उन्होने राजाओ को सलाह दी कि वे उस सगठन (काग्रेस) से मित्रता के सम्बन्ध स्थापित करे जो निकट भविष्य म मैत्रीपूर्ण व्यावस्था द्वारा ही सर्वोच्च सत्ता का स्थान लेने वाला है।

महात्मा गाधी व काग्रेस की नेक सलाह को राजाओ ने नही माना। वे अपने पुराने ढर्रे पर चलते रहे। यो जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, किशनगढ

भरतपुर, वासवाडा आदि के शासको ने प्रतिनिधि सभाये बनाने की कोशिश की ताकि जनता के कुछ चुने हुए व्यक्ति शासन मे कुछ भाग ले सके लेकिन ये सभायें न तो जनता का वास्तव मे प्रतिनिधित्व करती थी और न इन्हे शासन को प्रभावित करने के कोई अधिकार ही मिले थे। जनता इस कारण सतुष्ट नही हो सकी और उन्हे आदोलन चलाते ही रहना पडा। राजा और प्रजा के बीच खाई बढती ही गई।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् की घटनाओ और अधिकारिक घोषणाओ से स्पष्ट हो गया कि अग्रेज शीघ्र ही भारतीयो के हाथो मे सत्ता का हस्तान्तरण करने वाले हैं लेकिन राजाओ ने तब भी यह नही सोचा कि भावी शासन काग्रेस ही करेगी। अत उन्होने काग्रेस तथा उसके समर्थित प्रजा मण्डलो व लोक परिषदो को कोई महत्व नही दिया। विभिन्न रियासतो मे आन्दोलन चलते रहे और राजाओ द्वारा उनका दमन किया जाता रहा। इससे राजओ के प्रति जनता मे ज्यादा ही कटुता आ गई। जब भारत के स्वतन्त्र किये जाने का ब्रिटिश सरकार ने तय कर दिया तब भी कई राजा स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के स्वप्न देखने लगे। ऐसो मे जोधपुर नरेश महाराजा हनुवन्तसिंह मुख्य थे। यो कुछ नरेशो में राष्ट्रीय भावना भी जागृत हुई। ऐसो में बीकानेर नरेश महाराजा शार्दुलसिह व उदयपुर के महाराणा भूपालसिंह थे। राजाओ के प्रति जनता का पूर्ण विश्वास नही रहा इस कारण भारत के स्वतन्त्र होने के बाद काग्रेस ने यही उचित समझा कि राजाओ को पेन्शन देकर उनके सभी अधिकार छीन लिये जावें। प्रजा राजाओ से तग आई हुई थी ही। उन्होने इस कार्य में काग्रेस को समर्थन दिया।

सन् 1947 की 15 अगस्त को भारत स्वतन्त्र हुआ। यहा के राजाओ ने समय का अभूतपूर्व परिवर्तन देखकर अपनी रियासतो को भारतीय सघ मे सम्मिलित किये जाने को सहमति दे दी। इन रियासतो को भारतीय सघ में मिलाने में सरदार पटेल की सूझ-बूझ तथा लार्ड माउण्टबैटन की सलाह विशेष रूप से काम आई।

भारतीय सघ मे अधिमिलन हो जाने के पश्चात् रियासतो के एकीकरण का प्रश्न उठा क्योकि राजनतिक एकता तथा प्रशासनिक दृढता के लिये यह आवश्यक था कि भावी राज्य इतने छोटे नही हो कि वे प्रशासन ठीक प्रकार से नही चला सके। इस कारण यहा की 19 रियासतो

का एकीकरण किये जाने का तय किया गया। यह एकीकरण 5 अवस्थाओं में पूरा हुआ। पहली अवस्था में उत्तरपूर्व की चार रियासतें—अलवर, भरतपुर, करौली व धोलपुर का मिला कर 'मत्स्य संघ' 17 मार्च, 1948 को बनाया गया। एकीकरण की ओर दूसरा कदम उठाने पर सन् 1948 को 15 मार्च को कोटा, बुन्दी, भीलवाडा, बासवाडा, डुगरपुर, प्रतापगढ, शाहपुरा, किशनगढ व टोंक को मिलाकर एक संघ 'संयुक्त राजस्थान" बनाया गया। इस संघ के निर्माण के बाद ही उदयपुर के महाराणा ने इसमे शामिल होने की इच्छा प्रकट की। इस कारण अप्रैल 18 को उदयपुर रियासत भी इसमें सम्मलित हो गई। यह राजस्थान का तीसरा संघ था। तब ही सरदार पटेल ने सुझाव दिया कि जयपुर, जोधपुर, बीकानेर व जैसलमेर की रियासतें भी राजस्थान संघ में मिल जाय। राजस्थान मे राजप्रमुख के निर्वाचन तथा राजधानी के चुनाव के प्रश्न पर काफी विचार विमर्श कर एक नया बडा संघ 'महाराजस्थान' बनाने की सहमति राजाओं ने दे दी। यह संघ 30 मार्च, 1949 को बना। एकीकरण की प्रक्रिया को पूर्ण करने को 15 मई को 'मत्स्य संघ' महाराजस्थान मे मिला दिया गया।

सिरोही रियासत राजस्थान व गुजरात की सीमा पर स्थित थी। इसको गुजरात के लोग गुजराती भाषा भाषी व सस्कृति का बतलाते थे। इस कारण सरदार पटेल ने सन् 1948 मे इसे गुजरात मे मिला दिया था। इसका राजस्थानियो ने विरोध किया। केन्द्रीय सरकार ने यह देखकर 26 जनवरी 1950 को आबूरोड और देलवाडा की तहसीलो को बम्बई प्रान्त में व शेष भाग राजस्थान में मिला दिया। राजस्थान के लोगो ने तब भी आबूरोड व देलवाडा को तहसीलो को राजस्थान में मिलाने के प्रयास जारी रखे। राजस्थान के मध्य मे अजमेर-मेरवाडा आया हुआ था जो सभी प्रकार से राजस्थान से सम्बन्धित था। अत जब भारत के प्रान्तो का भाषा के अनुसार नवनिर्माण हुआ तब अजमेर-मेरवाडा तथा सिरोही रियासत की दोनो तहसील-आबूरोड व देलवाडा राजस्थान मे मिला दी गई। यह एकीकरण सन् 1956 को पहली नवम्बर को हुआ।

इस प्रकार लगभग 40 वर्षों तक बराबर संघर्ष करने के बाद यहा की जनता का एक राज्य के अन्तर्गत सगठित होकर स्वतत्रता के मीठे फल चखने को मिले। अब जनता आश्वस्त हो गई कि वह अपने मूल अधिकारों को निर्बाध भोग सकेगी। इन अधिकारो की प्राप्ति मे यहा के दो वर्गों-शिक्षित

मध्यम् श्रेणी व अनपढ काश्तकारो तथा दो जातियो— ब्राह्मणो व जाटो का मुख्य हाथ रहा। शिक्षित मध्यम् श्रेणी को सामन्तशाही वातावरण मे जीविका के वे साधन नही मिल पाये जो वे आशा करते थे। साधारण साक्षर सामन्त व धनी व्यापारी राजाओ की छत्रछाया मे मजे करते थे। सामन्त रात दिन शराब, नाचरग आदि मे डूबे रहते थे। वे अपनी जागीरो को अपनी निजि जायदाद मान बैठे थे। व्यापारी राजाओ व सामन्तो की हा मे हा मिलाते रहते थे। सभी प्रकार के सुख उन्हे पैसो के बल पर मिल जाते थे। ये लोग अशिक्षित काश्तकारो को चूसते रहते थे। शिक्षित मध्यम् श्रेणी के युवक नोकरियो की तलाश मे व अपनी जीविका चलाने हेतु उद्योग धन्धो के अभाव मे परेशान हो रहे थे। अत उन्होने आधुनिक विचारो को तेजी से अपनाया और राजनैतिक आन्दोलनो मे कूद पडे और आखिर स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ सामन्तशाही समाप्त करके रहे। इन शिक्षित मध्यम् श्रेणी के लोगो मे ज्यादातर ब्राह्मण युवक थे। ब्राह्मण होने के कारण इन लोगो को समाज मे बडा आदर था। समाज इनको अपना अगुआ मानता था और इनके द्वारा बतलाये मार्ग पर चलने मे नही हिचकिचाया। काश्तकारो मे जाटो की सख्या बहुत थी। इनका प्रतिशत अन्तिम जातिवार जनगणना के वर्ष (सन् 1941) मे समस्त आबादी का 10 प्रतिशत था। पिछले महायुद्ध के वर्षो मे इस जाति को जोधपुर के बलदेवराम मिर्धा, बीकानेर के कुम्भाराम आर्य व शेखावटी के हरलालसिंह आदि का नेतृत्व मिल गया। तबसे यह जाति अपने मूल अधिकारो की माग मे सबसे आगे आ गई। सामाजिक भेदभाव दूर करने, लागबाग व अत्याधिक लगान को कम करने के आन्दोलनो मे इस जाति ने बहुत ही महत्वपूर्ण भाग लिया। इन आन्दोलनो के कारण स्त्रियो मे भी जाग्रति आई। वे भी नारे लगाने लगी "राज किनो, किसाना रो", "जमीन कीनी, किसाना री" आदि, आदि। किसान वर्ग इस काल मे काफी शिक्षित हुआ और इस कारण वह वर्ग अब सभी क्षेत्रो मे महत्वपूर्ण भाग ले रहा है। आज विधानसभा सदस्याओ मे भी सबसे ज्यादा प्रतिशत किसान महिलाओ का है। सभी उच्च शिक्षा प्राप्त है। स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता आन्दोलनो के कारण सामाजिक परिवर्तन तेजी से आये। आज का युवक कल्पना ही नही कर सकता है कि लगभग 40 वर्ष पहले गावो मे जातिवाद, छुआछूत, दास प्रथा, बेगार, लागबागा आदि का अत्यन्त बोलबाला था। लेकिन अब वे तेजी से लुप्त हो रहे है। आज कोई भी व्यक्ति घोडे पर चढकर मनचाहे जहा जा सकता है। भगी का लडका भी मत्री हो सकता है। चमार की

स्त्री भी सोने के गहने पहन सकती है। सरगरा जाति का व्यक्ति पक्का मकान बनवा सकता है। किसी भी जाति का व्यक्ति कोई भी पेशा अपना सकता है, आदि आदि।

मेरे पिताजी ने लगभग 40 वर्ष पूर्व राजस्थान के सामाजिक जीवन को जैसा देखा उसका वास्तविक चित्रण अपने लेखों मे किया। उन्हे तत्कालीन समाज का जीवन सुखद नही लगा। यह उनके लेखो से स्पष्ट है। तत्कालीन समाज मे वह परिवर्तन लाना चाहते थे और इसके लिये उन्होने राजनैतिक आन्दोलनो को आवश्यक बतलाया। वह स्वयम् मारवाड सेवा सघ के मत्री रह चुके थे और इस कारण उनमे राजनैतिक चेतना काफी थी। ऐसे सिद्धहस्त लेखक की यह पुस्तक वर्तमान पीढी के युवक अत्यन्त उपयोगी पायेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

चि देवेन्द्रसिंह ने मोनो टाईप मे टिप्पणियां देकर पुस्तक को अद्यावधि करने का प्रयत्न किया है। मैं समझता हूँ कि उसका यह प्रथम प्रयास अच्छा हुआ है।

28 दिसम्बर, 1973 सुखवीरसिंह गहलोत



'इतिहास विभूति' श्री जगदीशसिंह गहलोत

एम आर.ए एस, एफ आर.जी.एस (लन्दन)

भूतपूर्व अधीक्षक, पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग,
बीकानेर व जोधपुर खण्ड, जोधपुर

[जन्म 14 - 1 - 1903 स्वर्गवास 22 - 9 - 1958]

लेखक का सक्षिप्त परिचय

(राजस्थान इतिहास परिषद् की स्मारिका से साभार)



'अन्तिम हिन्दू सम्राट हर्ष' की मृत्यु के बाद से उन्नीसवी सदी के आरंभ तक राजपूताना एक विस्तृत रणक्षेत्र रहा। यहा का इतिहास शौर्य, साहस, देशभक्ति और आत्मत्याग का इतिहास है लेकिन राजपूताने के सम्पूर्ण इतिहास का हिन्दी मे अभाव था। स्व. जगदीशसिंह गहलोत ने "राजपूताना का इतिहास" लिखकर इस अभाव की पूर्ति की। गहलोतजी ने संस्कृत की पुस्तकों, फारसी तवारीखो, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों, ख्यातो आदि के आधार पर इस इतिहास की रचना की है। राजपूताने की प्रत्येक रियासत का भौगोलिक व ऐतिहासिक वर्णन, प्रजा की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व वित्त संबधी स्थिति का विस्तारपूर्वक वर्णन आपके द्वारा ही किया गया है।

"राजपूताना का इतिहास" श्री गहलोतजी के अथक परिश्रम व अध्यवसाय का ही द्योतक है। जोधपुर के इस यशस्वी इतिहासकार ने इतिहास, पुरातत्व और साहित्य की साधना मे अपने जीवन का अमूल्य समय अर्पित कर दिया। पुरुषार्थ ही इनके जीवन का मूल-मन्त्र था। पढना और लिखना ही इनका प्रिय कार्य था। जोधपुर-बीकानेर खण्ड के पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य करते हुए भी आप अपनी साहित्य साधना मे रत रहते थे। राजपूताने के इतिहास के अतिरिक्त मारवाड राज्य का

इतिहास, इतिहास सहायक पचाग, भारतीय नरेश, राजस्थान का सामाजिक जीवन, मारवाड का सक्षिप्त वृतात, मारवाड के ग्राम-गीत, राजस्थान की कृषि कहावतें आदि अनेक पुस्तकों की आपने रचना की। आपकी कृतियो का बहुत सम्मान हुआ और देश के मूर्धन्य इतिहासकारो, पत्रकारो तथा साहित्यकारो ने आपकी प्रशसा की। उदयपुर के महाराणा ने 2,000), डूगरपुर नरेश ने 1,200) तथा प्रतापगढ नरेश ने 500) रुपये के पुरस्कार प्रदान कर आपका सम्मान किया। राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासकार रायबहादुर डॉ० गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने लिखा था ' मारवाड राज्य का ऐसा सुन्दर, सचित्र आद्योपान्त वर्णन आज तक हिन्दी भाषा मे हमे दृष्टिगोचर नही हुआ। विचार निर्भिकता और देशप्रेम स्थान स्थान पर झलकता है।" स्व० श्री मदनमोहन मालवीय ने श्री गहलोतजी की प्रशसा करते हुए लिखा था— "जोधपुर राज्य के लिये सतोष व गर्व की बात है कि उस राज्य का एक सपूत इतनी प्रसिद्धि प्राप्त इतिहासवेत्ता है।'

श्री गहलोत निर्भीक, निडर एव ओजस्वी व्यक्ति थे। आपकी रचनाओ मे राष्ट्रप्रेम तथा समाज कल्याण की भावना व्यक्त हुई है। आर्य समाज के सक्रिय कार्यकर्ता होने के नाते आप उसकी गतिविधियो मे प्रमुख भाग लेते थे। जोधपुर के सरकारी अजायबघर मे राष्ट्र निर्माताओ के तैल चित्रो की एक गैलेरी जोडने का श्रेय आपको ही है। 'तरुण राजस्थान" साप्ताहिक पत्र मे आपने राजस्थानी भाषा का प्रबल शब्दो मे समर्थन किया था। ई० सन् 1925 मे "मारवाडी मित्र" नामक राजस्थानी मासिक पत्र का सम्पादन भी इन्होने किया था। जोधपुर को अपने इस यशस्वी सपूत पर आज भी गर्व है।



राजस्थान का सामाजिक जीवन

सामान्य परिचय

राजस्थान भारतवर्ष के पश्चिमी भाग मे स्थित है। इस प्रान्त में अधिकतर राजपूत राजा राज्य करते है। इसलिये इसको राजपूताना कहते हैं।* इसका यह नाम अंग्रेजो के समय मे पडा। वि स 1857 (सन् 1800 ई) मे पहले पहल मिस्टर जार्ज टामस ने ही उस प्रान्त के लिये इस नाम का प्रयोग किया था।[1] यह नाम इस प्रान्त के लिये ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार गोडवाना और तिलगाना (क्षेत्रो के नाम) उन प्रान्तो के लिये हैं जिनमे गोड़ और तेलग लोग वसते है। यहाँ राजपूतो की सख्या अन्य जातियो—जाटो आदि को देखते कम है लेकिन राजपूतो के अधिक प्रभावशाली होने से ही यह प्रान्त राजपूताना कहलाया।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक कर्नल टॉड ने वि स 1886 (ई सन् 1829) मे इस प्रान्त के लिये अपने इतिहास मे "राजस्थान" शब्द का प्रयोग किया था।[2] इसके पूर्व यह प्रान्त कभी भी राजस्थान या अन्य ऐसे ही एक नाम से प्रसिद्ध नही रहा। इसके भिन्न-भिन्न क्षेत्र भिन्न-भिन्न नामो से पुकारे जाते थे।

इस प्रान्त का आकार एक पतग के समान चौकोर है। यह 23 अंश 3 कला से 30 अंश 12 कला उत्तर अक्षांश और 69 अंश 30 कला से 78 अंश 17 कला पूर्व देशान्तर के बीच फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल

---

1. विलियम फ्रेंकलिन, मिलीट्री मेमायर्स ऑफ मिस्टर जार्ज टॉमस, पृष्ठ 347, सन् 1805 ई (लदन सस्करण)

2 टॉड, एनाल्स एँड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भाग 1, भूमिका (सन् 1829 ई. का सस्करण)

---

* फारसी में राजपूत का बहुवचन 'राजपूता' लिया जाता है। अत

1,35,052 वर्ग मील[1] है और इसमे 148 शहर और 34,376 गाँव हैं।[2] अब इस प्रान्त मे 1,20,81,880 मनुष्य बसते हैं।* इस प्रान्त के उत्तर और उत्तर-पूर्व मे पजाब, उत्तर-पश्चिम मे पजाब प्रान्त का भावलपुर राज्य, पूर्व मे सयुक्तप्रान्त (यू पी) और ग्वालियर राज्य, दक्षिण मे मध्यभारत और गुजरात के ईडर आदि राज्य हैं तथा पश्चिम मे सिन्ध प्रान्त है।‡

इस प्रान्त मे 21 राज्य, 2 खुदमुख्तियार ठिकानें (जागीर) और बीचो-बीच मे एक छोटा-सा हिस्सा अग्रेजी इलाके का है, जो "अजमेर मेरवाडा" के नाम से पुकारा जाता है। 21 राज्यो मे उदयपुर, डूँगरपुर, बासवाडा, प्रतापगढ और शाहपुरा गहलोतो (सिसोदियो) के, बूँदी, कोटा और सिरोही चोहानो के, करौली और जैसलमेर यादवो के, जयपुर व अलवर कछवाहो के, जोधपुर, बीकानेर और किशनगढ राठोड राजवश के, झालावाड झाला राजपूतो का, दाता परमारो का, भरतपुर और धोलपुर जाट नरेशो के, और टोक तथा पालनपुर मुसलमान राजघराने के अधिकार मे हैं।† कछवाहो का लावा नामक स्वतन्त्र ठिकाना टोक राज्य मे होने पर भी वि स 1924 (ई सन् 1867) से अलग गिना जाता है। ऐसे ही राठोडो का कुशलगढ ठिकाना भी स 1925 (ई 1868) से बासवाडा राज्य से स्वतन्त्र है।

---

1 सन् 1931 ई की जन गणनानुसार राजस्थान का क्षेत्र-फल 1,29,59 वर्ग मील था परन्तु इसमे अजमेर मेरवाडे का क्षेत्रफल 2,711 वर्ग मील शामिल नहीं था। सन् 1933 ई मे दो राज्य पालनपुर और दाता राजस्थान ऐजेन्सी मे और शामिल किये गये। इनका क्षेत्रफल 2,115 वर्ग मील भी अलग था। इन सबको जोडने से अब राजस्थान का कुल क्षेत्रफल 1,35,052 वर्ग मील होता है और इस प्रकार मनुष्य गणना भी जोडने से 1,12 25,712 से अब 1 20,81,880 होती है।

2 इस सख्या मे पालनपुर राज्य के 520 गाँव तथा 2 शहर और दाता राज्य के 172 गाँव भी शामिल हैं।

---

* वर्तमान राजस्थान का कुल क्षेत्रफल 1,32, 147 वर्ग मील है तथा सन् 1971 की जनगणना के अनुसार जनसख्या 2,57,65,806 हैं जिनमे पुरुष 1,34,84,383 तथा स्त्रिया 1,22,81,423 हैं।

‡ राजस्थान के उत्तर मे पजाब का कुछ भाग तथा हरियाणा प्रान्त, उत्तर पूर्व मे उत्तरप्रदेश, पूर्व मे मध्यप्रदेश दक्षिण मे गुजरात और पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम मे पाकिस्तान हैं।

† पालनपुर व दाता राज्य अब गुजरात राज्य के भाग है। राजपूताना एजेन्सी भारत के स्वतन्त्र होने पर टूट गई और उसके टूटने के साथ ही ये दोनो राज्य पहले बम्बई प्रान्त के और अब गुजरात राज्य के भाग बन गये हैं।

ऐतिहासिक महत्व

राजस्थान वह वीरभूमि है जिसकी समानता भारतवर्ष का अन्य कोई भी स्थल नही कर सकता है और यह भी लिखना अनुचित नही होगा कि इस भूमि का सा गौरव ससार के अन्य किसी भी स्थान को प्राप्त नही हो सका है। यद्यपि ससार के इतिहास मे अनेक वीरो के देश-प्रेम से भरे कारनामे देखने को मिलते हैं तथापि वे राजस्थान के वीरो और वीरागनाओ के चरित्रो से तुलना करने पर फीके लगते है। इसी से यह स्थल भारतवासियो के लिये वास्तविक तीर्थ स्थान सा है। हमारे भारतीय नवयुवको को भारतीय वीरता, धर्म व प्राचीन आदर्श को जानने के लिए दूर-दूर के देशो मे भटकने की आवश्यकता नही है। राजस्थान का कोना-कोना वीरता, देशप्रेम, स्वाभिमान, निर्भयता धर्म, आन, मान और शान पर मर मिटने के भावो से गूँज रहा है। यहा के वीरो के कार्यो का सुनकर एक बार तो कायर के हृदय मे भी वीरता का सचार होने लगता है। इस वीर-भूमि की प्रशसा करने मे विदेशी विद्वान भी नही अघाते है। कर्नल टॉड ने ठीक ही लिखा है कि "राजस्थान मे कोई छाटा राज्य भी ऐसा नही है कि जिसमे (यूरोप की) थर्मोपाली जैसी रणभूमि न हो और शायद ही कोई ऐसा नगर मिले, जहाँ ग्रीक वीर लियोनिडास के समान मातृ-भूमि पर बलिदान होने वाला वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो।"*

महाराणा साँगा, जयमल, रावत पत्ता, महाराजा प्रतापसिंह, दुर्गादास राठौड आदि अनेक वीरो और पद्मिनी मीराबाई, पन्नाधाय, गोराधाय आदि देवियो की यह जन्म भूमि है। इसे देश के लिए मर मिटने वालो का बलिदान-कुण्ड भी कह सकते हैं। वीरो का आत्म बलिदान और वीर नारियों का जौहर[1] का कठिन असिधारा व्रत ही राजस्थान की अमूल्य और अक्षय निधि है। यहाँ के वीरो ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए निर्भय होकर अपने जान और मान कुरबान किये थे और यहा की वीरांगनाओ ने बिना हिचकिचाहट के अपनी इज्जत बचाने के लिए अपनी और अपने बाल-बच्चो

1 युद्धो मे जब राजपूत बचने की कोई आशा नहीं देखते थे तब अपनी स्त्रियों को विधर्मियो से बचने के लिए अग्नि मे समर्पण करने की आज्ञा देते थे इसे 'जौहर' कहते थे।

* कर्नल जेम्स टॉड-एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज आफ राजस्थान, जिल्द,

की आहुति दे डाली थी। ऐसी भूमि के प्रत्येक स्थल पर यहां के रणबाँकुरो की गौरव गाथा भरी पडी है और यहां के पत्थर और मिट्टी तक भी इन वीरो के रक्त से सिंचे होने की गवाही देते है। चित्तौड, कुम्भलगढ, जैसलमेर, मण्डोर, सिवाना, रणथम्भोर, भरतपुर और जालोर के सुदृढ दुर्गों की दीवारो से आज भी क्षत्रियो के प्रवल पराक्रम और वीरागनाओं के जौहर की प्रति-ध्वनि निकल रही है। वास्तव मे उन ललनाओ के साहस की जितनी प्रशसा की जाय उतनी थोडी है, जिन्होने आन के लिए ही अपने पति, पुत्रों और कुटुम्बियो को रणक्षेत्र मे भेजकर उनके पीछे की चिन्ता को दूर करने के लिए अपने हाथ से ही अपने सिर तक काट डाले थे। वीर बाला का, मोह को त्याग कर रणक्षेत्र को विदा करते हुए अपने पति के हाथ मे बड़े उत्साह से रण-ककण बांधने का दृश्य कवियो और भाटचारणो के मुख से स्पष्ट हो जाता हैं —

फंकण बधन रण चढण पुत्र बधाई चाव।
तीन दिहाड़ा त्याग [1]रा कांई रंक कांई राव॥

ये ही रमणियां अपने कुटुम्बियो के केसरिया वस्त्र पहन कर युद्ध मे वीर गति प्राप्त कर लेने पर दहकती हुई चिताओ मे अपने कोमल शरीर की आहुति दे डालती थी। यही नही, बल्कि बहुत-सी देवियो ने समय आने पर रणचण्डी का रूप धारण कर अपने खड्ग से शत्रुदल को घास की तरह काटकर अन्त मे आत्म-बलिदान किया था। इसीसे आज भी यह भूमि उस दृश्य की याद दिलाती है जबकि भीषण युद्ध मे सैनिक अपने शत्रुओं के मुण्डो को गेंद की तरह उछाल कर अन्त मे स्वय भी महानिद्रा मे शयन कर जाते थे। इन्ही ऐतिहासिक घटनाओ को देखने से हल्दीघाटी की भीषण लडाई, राजपूत वीरो की ललकार, महाराणा प्रताप के अद्भुत साहस, राठौड जयमल और सिसोदिया पत्ता के जाति-प्रेम मिर्जा राजा जयसिंह के युद्धकौशल, महाराजा जसवन्तसिंह के अदम्य उत्साह, राठौड दुर्गादास के देश प्रेम और वीर सतियो के जौहर के चित्र मानसिक पटल पर खिच जाते

---

1 दान देना। राजस्थान मे भाट, चारण और नक्कारची (दमामी) लोगों को जो दान विवाह आदि के समय दिया जात है उसे "त्याग" कहते हैं। (देखो कायदा बाबत खर्च शादी व गमी व त्याग कौम राजपूत मुजव्विजे जनरल कमेटी राजस्थान अजमेर सन् 1888 ई पृष्ठ 1 तथा कानून शादी और गमी वाल्टरकृत राजपूत हितकारिणी सभा, राज मारवाड पृष्ठ 8 सन् 1891 ई)

है और साथ ही सहसा मुँह से ये शब्द निकल पड़ते हैं कि "राजस्थान ! तू धन्य है, राजपूत जाति तेरी कीर्ति अटल है ! वीर क्षत्राणियो ! तुम्हारा दूध उज्ज्वल है !"

यहा के सामान्य व्यक्ति भी समय पडने पर मान रक्षा के लिए प्राण देने मे मोह नही करते थे। इसी से आज दिन तक यहाँ के गाँव-गाँव मे कहा जाता है —

घर जाता धरम पलटता त्रिया पडता ताव ।
ये तीनुंहि दिन मरण रा कहा रक कहा राव ।।

अर्थात्, जब कोई अपना घर या धरती छीनने को तैयार हो, जब अपने धर्म पर आपत्ति आवे और जब स्त्री जाति का अपमान होता हो तब प्रत्येक गरीब और अमीर को अपने प्राणो की बलि देने मे सकोच नही करना चाहिए।

जब हम इतिहास मे उपरोक्त दोहे के अनुसार, बिना जाति पाति के भेद भाव के, सबको एक साथ रणभूमि मे नृप के साथ जाने का वृतान्त पढते हैं तब हमारा मस्तिष्क अभिमान से ऊँचा हो जाता है। वह कैसा स्वर्णीम समय था जब मातृभूमि की रक्षार्थ यहा ऊँच-नीच का भेद भुला कर क्या राजा और क्या रक एक साथ कन्धे से कन्धा लगाकर शत्रु से रणभूमि मे जूँझते थे। ऐसे जूँझारो के प्राय प्रत्येक ग्राम मे पवित्र स्मृति चिन्ह जहा तहा मिलते है।

इन्ही सब अपूर्व और महत्वपूर्ण घटनाओ के लिए ही राजस्थान भारतवर्ष के इतिहास का चिरस्मरणीय घटना-स्थल है। यह भूमि भारत की नाक है। यही भारतवर्ष का प्राण है। यद्यपि राजस्थान का सिंह आज सोया हुआ है और यहाँ की जनता अविद्या, अफीम व मदिरा रूपी शत्रुओ से घिरी हुई है तथापि इसके पूर्ववर्ती चरित्रो को देखते हुए भारत का कौन ऐसा पुरुष होगा जिसके हृदय मे यहाँ पर हुई घटनाओ का स्मरण कर देशभक्ति व स्वाभिमान का भाव नही पैदा होगा ? इस समय का शोचनीय दशा मे भी यही एक स्थल है जहाँ पर प्राचीन आर्य सभ्यता राजनीति और क्षत्रियो की प्राचीन विभूतियो के दर्शन हो सकते है। इस पवित्र धरती का स्मरण करने से ही श्रद्धा से सिर झुक जाता है। यहाँ के इतिहास के पन्ने उलटते ही मुर्दा दिल मे भी जोश आ जाता है और कायर पुरुषो तक की भुजाएँ फटकने लगती है।

प्राचीन राजस्थान

जो प्रदेश इस समय राजस्थान कहलाता है वह प्राचीन काल में समुद्र जल से ढका हुआ था । भूगर्भवेत्ता इस बात से सहमत है, क्योंकि अब तक यहा पर सीप, शख, कौडी आदि अनेको सामुद्रिक पदार्थ मिलते हैं ।* महाभारत के समय मे राजस्थान का उत्तरी भाग (नागौर, बीकानेर आदि) जांगल देश[1] और पूर्वी भाग (जयपुर, अलवर आदि) मत्स्य देश कहलाता था और यही पर पांडवो ने गुप्त भेष मे एक वर्ष व्यतीत किया था ।[2] महाभारत के युद्ध से लेकर वि स 264 वर्ष पूर्व (ई सन् पूर्व 321) तक का राजस्थान का इतिहास बिलकुल अन्धकार मे है । इसके बाद मौर्य्य वश के प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त और उसके पौत्र सम्राट अशोक का राज्य इस प्रदेश पर भी रहा था । जयपुर राज्य के वैराट (विराट)[3] कस्बे मे अशोक के दो शिलालेख वि स पूव 193 (ई सन् से 250 वर्ष पूर्व) के मिले है ।[4] ईसा के 200 वर्ष पूर्व के आस पास जब यूनानी (ग्रीक) लोग उत्तर-पश्चिम से भारत मे आये तब उनका अधिकार भी यहाँ रहा था और उन लोगो ने

---

1 महाभारत वनपर्व अ 23, श्लोक 5, नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग 2, अंक 3, स 329, स 1978 वि ।

2 वही, पृष्ठ 333 ।

3 वैराट नाम के अनेक स्थान भारतवर्ष मे हैं परन्तु वैराट (विराट) जिसका वर्णन महाभारत मे आया है वह मत्स्य देश की राजधानी थी और वह वैराट अब राजस्थान मे जयपुर राज्य के अन्तर्गत हैं ।

4 कनिंगहम, कार्पस् इन्स्क्रिपशन्स इंडिकेरम भाग 1 पृष्ठ 96-97

---

* आज से लगभग 1,20,000 पूर्व राजस्थान की चम्बल, बनास, गभीरी, बेडच, बागा, लूणी आदि नदियो के किनारे पर मानव बस्तिया बस गयी थी । प्रारम्भ मे ये लोग गुफाओं व पेडो पर रहते थे तथा जगली जानवरो को मारकर या जगली पेडो के फल फूल इकट्ठे कर खाते थे । इस युग का इतिहास अभी तक स्पष्ट नही हैं । राजस्थान का क्रमवद्ध इतिहास आज से लगभग पाच हजार वर्ष पूर्व से आरम्भ होता है । ससार के अन्य राष्ट्रो का क्रमवद्ध इतिहास इसी समय से आरम्भ होता है । गगानगर जिला के कालीवगा, नोहर, सोथी आदि स्थानो की खुदाई करने पर वहा कई बस्तिया मिली है । इन बस्तीयो के लोग काफी सभ्य थे । इनकी सस्कृति "सौथी सस्कृति" कहलाती है, तथा हडप्पा सस्कृति से भी प्राचीन है । इन सौथी सस्कृति के लोगो के बाद हडप्पा सस्कृति वाले लोग यहा आकर बसे । इनका समय लगभग चार हजार वर्ष पूर्व का है ।

जो प्रदेश जोते थे, उनमे "नगरी" या माध्यमिका नाम की पुरानी नगरी का वर्णन भी मिलता है।[1] वह नगरी चित्तौड़ के पास थी। अब उसके खण्डहर चित्तौड़ के किले से 7 मील उत्तर में स्थित हैं। यूनानी नरेशों में दो राजाओं (एपालोडोटस और मिनेडर) के कई सिक्के मेवाड़ से मिले हैं।[2] ईसा की दूसरी शताब्दी से चौथी शताब्दी तक शक (सिथियन) लोगों का राजस्थान के दक्षिण-पश्चिम भागों पर अधिकार रहा और शक सवत् 72 (वि स 207=ई सन् 150) का गिरनार स मिले लेख से शक नरेश रुद्रदामा का राज्य मरु (मारवाड़) और साबरमती के आस पास तक फैला होना प्रकट होता है।[3] चौथी शताब्दी के अन्तिम भाग से लेकर छठी शताब्दी तक मगध के गुप्त वश का राज्य राजस्थान के कई भागों पर रहा था।[4] बाद मे हूणों के राजा तोरमाण ने गुप्तो को निकाल दिया।[5] सातवी शताब्दी के शुरु मे हर्षवर्धन ने, जो वैस वश का क्षत्रिय राजा था, थाणेश्वर और कन्नोज को अपनी राजधानी बनाया और राजस्थान का बहुत सा हिस्सा अपने राज्य मे मिला लिया।[6]

सवत् 696 (ई स 639) के लगभग जब चीनी यात्री हुएनसांग भारत में भ्रमण करता हुआ राजस्थान मे आया तब उसने राजस्थान को चार भागों मे बँटा हुआ पाया था। अर्थात् पहला गुर्जर (जिसमे जोधपुर, बीकानेर और शेखावटी का कुछ भाग था), दूसरा बधारि (बागड) (जिसमे दक्षिण भाग और बीच का कुछ हिस्सा था) तीसरा बैराठ (जिसमे जयपुर, अलवर और टोंक का कुछ हिस्सा था) और चौथा मथुरा था (जिसमें आधुनिक भरतपुर, धौलपुर और करौली के वर्तमान राज्य थे)। 7वी से 11वीं शताब्दी के बीच राजपूत जाति के कई वश प्रसिद्धि में आये, जिन्होंने अपने बाहुबल से यहा के आदि निवासियो व विदेशियो को हटा कर अपने अपने राज्य स्थापित किये। ये गहलोत, पड़िहार, चौहान और भाटी (7वी शताब्दी), परमार, सोलंकी (10वी शताब्दी),

---

1 कनिंगहम, आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग 6 पृष्ठ 203।

2 नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन सस्करण भाग 5 पृष्ठ 203।

3 इण्डियन ऐंटिक्वेरी भाग 7 पृष्ठ 259।

4 फ्लीट, गुप्त इन्सक्रिप्शन्स पृष्ठ 141।

5 ऐपीग्राफिया इन्डिका भाग । पृष्ठ 239।

6 बील बुद्धिस्ट रेकड्ज ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग । पृष्ठ 213-219

नाग, जौधेय (जोहिया), तँवर, दहिया, डोडिया, गौड, यादव, कछवाहा और राठौड आदि के नाम से प्रसिद्ध हुए। बाहरवी शताब्दी मे मुसलमानो के आक्रमण के समय इन्ही राजपूत राजवशो के राज्य राजस्थान मे फैले हुए थे।

राजस्थान का वर्तमान रूप

राजनैतिक शासन के लिहाज मे राजस्थान की देशी रियायतो का सम्बन्ध भारत सरकार के एजेन्ट टू गवर्नर जनरल (ए जी जी) अजमेर के द्वारा है। इन रियासतों के समूह बने हुए हैं जिनमे एक एक अग्रेज राजदूत (रेजीडेण्ट या पोलीटिकल एजेण्ट) रहता है। मेवाड रेजीडेन्सी व दक्षिणी राजस्थान स्टेट एजेन्सी (उदयपुर) के मातहत उदयपुर, डूगरपुर, वासवाडा और प्रतापगढ है। पश्चिमी राजस्थान रेजीडेन्सी (जोधपुर) के अधीन जोधपुर, जैसलमेर, पालनपुर और दाता के राज्य है। जयपुर, अरावर, शाहपुरा, टोक और किशनगढ का सम्बन्ध जयपुर रेजीडेन्सी, (जयपुर) से है। पूर्वी राजस्थान स्टेट्स एजेन्सी (भरतपुर) के अन्तर्गत भरतपुर, बूदी, कोटा, झालावाड, करोली और धोलपुर की रियासते है। बीकानेर और सिरोही राज्यो का सम्बन्ध सीधा ए. जी जी (रेजीडेन्ट राजस्थान) से है।

इन रेजीडेन्टो या पोलीटिकल एजेन्टो (राजदूतो) के माध्यम से देशी राज्यो और भारत सरकार के बीच लिखा-पढी होती है और आवश्यकतानुसार राज्य के आतरिक मामलो मे भी राजाओं को सलाह दिया करते हैं। राज्यों के शासन प्रबन्ध पर इनकी दृष्टि रहती है। बिना अग्रेज सरकार की आज्ञा के ये नरेश किसी विदेशी सत्ता से सन्धि नही कर सकते है। आज कल भारतीय नरेशो की शिक्षा, लालन पालन बहुधा अग्रेजी रग-ढग से और गोरे अध्यापको द्वारा ही होती हैं। इससे बहुधा नरेश अपने देशी रीति रिवाजो को भूलते चले जा रहे है।

किसी समय इन राजाओ के लिए अग्रेजी भाषा मे "किंग" (राजा) शब्द का प्रयोग किया जाता था किन्तु आजकल इनके लिए "चीफ" या "प्रिन्स" शब्द का प्रयोग होता है। यद्यपि ये देशी नरेश अपने को "राज राजेश्वर" और "महाराजधिराज" लिखते हैं।

निवासी

सन् 1931 की जन गणना के अनुसार राजस्थान की आबादी 1,12,25,712 हैं, जिसमे 13,08,271 लोग कस्बो मे और शेष गावो मे रहते है।* यहा प्रति वर्गमील 76 मनुष्य औसतन निवास करते है। 35 मनुष्य प्रति वर्गमील तो पश्चिमी भाग के रेगिस्तान और 79 दक्षिण के उपजाऊ भाग मे और 165 प्रति वर्गमील-पूर्वी भाग मे रहते हैं। सब से घनी आबादी भरतपुर राज्य मे है जहाँ प्रति वर्गमील 316 मनुष्य निवास करते हैं और सबसे कम आबादी जैसलमेर मे है जहा प्रति वर्गमील 4 मनुष्य रहते हैं।≛ कुल आबाद नगरो की सख्या 145 और गावो की 33,688 है।[1] इनमे अनेक जातिया निवास करती है जो मुख्यतया तीन विभागो मे बाटी जा सकती है, अर्थात् हिन्दू‡, मुसलमान और आदिवासी।§ हिन्दुओ मे बहुत सी जातियाँ ब्राह्मण, राजपूत, भाट, महाजन (वैश्य), जाट, माली, गूजर आदि हैं परन्तु विशेष जातियाँ जो राजस्थान के बाहर दूसरे प्रान्तो मे नही पाई जाती है, उनके नाम यह हैं —

(1) जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर और सिरोही राज्यो मे मेघवाल (भाबी, ढेढ, बलाई) रेगर, बावरी[2] (मोगिया) भील, थोरी, नायक, भोपा,

---

1 मनुष्य गणना के इन सब आंकडो मे अजमेर, मेरवाडा और पालनपुर तथा दांता राज्यो के आंकडे सम्मिलित नहीं है।

2 यह जुर्म पेशा जाति मानी जाती है जो मेवाड मे मोगिया और जयपुर मे बोहरे कहलाती है।

---

* राजस्थान मे सन् 1971 की जनगणना के अनुसार कुल जनसख्या 2 56,65,806 है जिसमे 45,63,791 लोग नगरो म रहते हैं। कुल नगरो की सख्या 152 तथा गावो की सख्या 32,241 है।

≛ सन् 1971 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की जनसख्या का औसत घनत्व 75 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। सबसे अधिक घनत्व भरतपुर जिले मे 184 है। द्वितीय स्थान जयपुर जिला का 177 हैं। सबसे कम घनत्व जैसलमेर का 4 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

‡ सन् 1971 की जनगणना के अनुसार हिन्दुओ की सख्या 2,30,93,895 हैं। इनमे से अछूतो की सख्या 40,75,580 है।

§ सन् 1971 की जनगणना के अनुसार मुसलमानो की जनसख्या 17,78,275 है।

वीसनोई, गांछा, कुनवी, मीणा, सीरवी, सरगरा, रेवारी, रायका, वेद, धाणका, वर्गी, डाकोत, (दोशात्री), दरोगा (रावणा), बारी,[1] (रावत) राठ (लोक) गरसिया, घोसी (मुसलमान ग्वाला), घाची, (हिन्दू ग्वाला). डवगर, सासी, सरभगी, साटिया, गवारिया, जागरी,[2] भगत,[3] मोतीसर, चारण, सेवग (भोजक, शाकद्विपी), सालवी और रगड है।

(2) जयपुर, अलवर, भरतपुर आदि पूर्वी रियासतो मे अहीर, खटीक, मेव, मीणा, वारहसैनी (द्वादस श्रेणी), चतुरसैनी, और सैनी।

(3) उदयपुर, डूगरपुर और दक्षिणी रियासतो मे डांगी, धाकड, भील, मीणा, हूमड, अजना।

(4) किशनगढ, अजमेर— मेरवाडा मे मेर, चीता, रावत आदि।

प्राचीन काल मे भारतवर्ष मे केवल चार वर्ण थे जो गुण, व्यवसाय, स्वभाव, संस्कृति आदि के आधार पर ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र माने जाते थे, केवल जन्म से ही नही। अर्थात् ब्राह्मण गुण कर्म आदि से शूद्र बन जाता था और एक शूद्र अपने को ब्राह्मण तक बना सकता था। आपस मे खान पान मे कोई रोक टोक नही थी। शुद्धता का विचार अवश्य रखा जाता था। पुराणो मे अनेको उदाहरण वर्ण परिवर्तन के मिलते है। यो सामान्यत शूद्र वही होते थे जिन्हे आर्य लोग जीत कर अपने समाज मे सम्मिलित कर लेते थे। उनका सास्कृतिक धरातल निम्न कोटि का होता था। चीनी यात्री हूवेनसाग के भारत भ्रमण के समय (ई सन् 630-645) तक भारत मे 4 वर्ण थे। बौद्धकाल (ई सन् से पूर्व 300 से सन् 500 ई) मे तो जन्म सम्बन्धी जातीय और सामाजिक नियम नही थे इसलिये वे बिना जाति और वश का विचार किये ही वैवाहिक सम्बन्ध करते थे। जोधपुर मे मिले वि स 894 चैत्र सुदि 5 (ई सन् 837 की 15 मार्च, गुरुवार) और स 918 चैत्र सुदी 2 (ई सन् 861 की 17 मार्च, सोमवार) के शिला लेखो से पाया जाता है कि ब्राह्मण

---

1 यह लोग पत्तों के दोने और पत्तल बनाकर वेचते हैं। आगरा, इलाहाबाद व लखनऊ मे भी *'बारी' नाम की एक जाति है जो यही पेशा करती है और झूठन* भी उठाती है।

2 व 3 हिन्दू वेश्याओं के बाप भाई आदि। जागरी लोगों की बहन बेटियां पातर' और भक्तों की भक्तण कहलाती है यह दोनो जातियां अलग अलग है।

हरिश्चन्द्र की दो पत्नियों में से एक ब्राह्मण और दूसरी क्षत्रिय जाति की थी। मारवाड से जाकर कन्नोज मे अपना राज्य स्थापित करने वाले पडिहार राजा महेन्द्रपाल के गुरु राजशेखर ब्राह्मण की विदुषी पत्नी अवन्ति सुन्दरी चौहान वश की थी। इन जातियो व उपजातियो के कारण देशभेद, धर्मभेद, व्यवसाय भेद एव अविद्या था। जाति के झमेलो ने यहाँ तक जोर पकडा कि 4 वर्णों के स्थान पर अनेको जातियाँ बन गई और परस्पर विवाह सम्बन्ध की बात तो दूर रही खाने पीने मे भी बडा भेद हो गया। एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण के हाथ का खाना नही खा सकता था और न विवाह कर सकता था। बारहवी शताब्दी तक ब्राह्मण वर्ग मे कोई जातिया या उपजातिया नही बनी थी। गौड और पच द्राविड का भी भेदभाव नही था। वि स 1200 के बाद सम्भवत मांसहार और अन्नाहार के कारण यह भेद प्रारम्भ हुआ और बाद मे नगरो क्षेत्रो आदि के नाम से ब्राह्मणो की भिन्न भिन्न जातियाँ बन गई।[6] इसी प्रकार दूसरे वर्णों की दशा हुई और अब 4 वर्णों के स्थान पर 2,378 जातियाँ बन गई है। कई जातियाँ तो ऐसी है कि उनकी सख्या 15 परिवार से अधिक नही है और उन्ही 15 परिवारो मे उनका विवाह सम्बन्ध आदि होता है।

राजस्थान मे जातिवाद अन्य प्रातो की भाति ही काफी फैला हुआ है। शिक्षित ज्यादा नही होने के कारण यहाँ सभी का इसमे विश्वास है। जाति के अनुसार ही किसी भी व्यक्ति का मान व आदर रक्खा जाता है तथा कथित ऊची जातियो वालो से अच्छा व्यवहार रखा जाता है लेकिन पिछडी जातियो के लोगो से अच्छा व्यवहार नही रखा जाता है। इस कारण पिछडी जाति के लोग बहुत ही कष्टमय जीवन बीताते है। उन्हे सोना व चान्दी के गहने पहनने तक की इजाजत नही है। सामन्त लोग तो इतने रूढीवादी है कि यदि पिछडी जाति की कोई स्त्री गहना पहन लेती है तो उससे गहने उतरवा लेते है और उसका समाज मे रहना मुश्किल कर देते है। अछूतो को पानी पीने के लिये सार्वजनिक कुओ पर जाने नही दिया जाता है। जो पानी पशु पीते है वही पानी उन्हे लेन दिया जाता है। उच्च जाति वाले तथाकथित पिछडी जाति के लोगो के हाथ का न तो खाना खाते है और न उठते बैठते है। सामान्यत उच्च जातिवाले तथा पिछडी जाति वालो के मोहल्ले तक अलग अलग होते है। इस प्रकार हिन्दू जाति के लोग

---

6 चिन्तामणि विनायक वैद्य कृत हिन्दू भारत का अन्त (मध्ययुगीन भारत) भाग 3 पृ 578-580 हिस्ट्री ऑफ मेडीएवल इण्डिया जिल्द 3 पृ 375 से 381।

हिन्दू होते भी एक नही हो पाते हैं। इधर मुसलमानो मे भी हिन्दुओ के देखा देखी अपने मे मुगल सैय्यद शेख, पठान आदि जातियाँ और उपजातियां-पिंजारा, तेली रंगरेज, सिलाती लोहार, जुलाहा कुंजडा, सिलावट, मीरासी आदि बना डाली। इससे उनम भी शादी व्यवहार का भेद हो गया है।

राजस्थान के ज्यादातर देशी राज्यो म राजपूत ही शासक है। अत यहा पर उनका उल्लेख करना आवश्यक है। यहाँ की 21 रियासत राजपूत जाति की भिन्न भिन्न खांपो (वशो) के अधीन है। सामान्यत राजपूत सुडोल, कद्दावर और मजबूत होते है। इनमे दाढी रखने का रिवाज है परन्तु आजकल इसका रिवाज उठ रहा है। ये लोग मान मर्यादा और आनबान के लिए अपना जान हथेली पर रखते आये है। अपने राज्य जाति और मान मर्यादा को बचाने के लिए केसरिया करना और बाल-बच्चा सहित शत्रु के साथ लडकर मर जाने के लिए प्रसिद्ध है। इसी कारण अन्य जाति के लाग इनका आदर करते आये है। लकिन अब समय बदलता जा रहा है। अब केवल शारीरिक बल व तलवार के भरोसे पर न रहकर मानसिक स्वस्थ्य व कलम के धनी व्यक्तियो का जमाना आ रहा है। अब भूमि पर खेती कराने वालो के बदल खेती करने वालो को महत्व दिया जा रहा है। खती न करने वाल राजपूतो की आर्थिक व सामाजिक स्थिति गिरती दिखाई दे रही है। अत राजपूता का युग के परिवतना की ओर ध्यान देकर अपने म भी परिवतन लाना चाहिये।

राजस्थान मे राजपूत 6 33 830 हैं जिसम अजमेर-मेरवाडा जिला मे 17 273 है। रजवाडो म इनकी खापवार-गणना (सन् 1931 ई की मनुष्य गणनानुसार) इस प्रकार है—

खाँप	पुरुष	स्त्री	कुल जोड
राठौड	90 653	72 481	1,63 134
कछवाहा	60 889	35 459	96 429
चौहान	46 699	41 995	88 694
यादव	33 285	28 564	61 849
गहलोत (सिसोदिया)	30 142	24 596	54 738
पँवार (परमार)	21 111	14 977	36 088
पडिहार	11 406	11,047	22 453
तवर (तोमर)	11,200	9 668	20 868

सोलंकी	10,232	8,857	19,089
गौड	3,061	2,246	5,301
झाला	2,753	2,315	5,068
वडगूजर	1,711	1,436	3,147
चन्देल	92	62	154

यद्यपि राजपूत लोग सब एक ही है परन्तु इनमे भी एक दूसरे के धन और हैसियत के लिहाज से और कुछ रस्मो के भेदभावो के कारण एक दूसरे से खानपान और व्यवहार का सम्बन्ध नही पाया जाता है। जैसे राजपूतो का एक थोक ऐसा है जिसमे विधवा स्त्री का नाता (करेवा-पुर्नविवाह) होता है। मनुष्य गणना आदि अवसरो पर इन "नातारायत राजपूतो" का गणना शुद्ध राजपूतो मे होती है और उसमे "नातारायत" आदि कुछ नही लिखा जाता है परन्तु आपस मे धन, सम्पत्ति, जमीन-जायदाद वाले इनको अपने बराबर नही समझते हैं क्योकि यह थोक साधारणतया गरीब होता है। ये लोग दूसरे राजपूतो की भूमि बोते है। इनकी कन्याऐं कभी कभी बड़े-बडे ठाकुरो के यहाँ भी ब्याह दी जाती है। कहावत भी है कि "नातरायत की तीजो पीढो गढ चढे है"।[1]

राजपूतो के विवाह सम्बन्धी यह आम रिवाज है कि एक खांप (कुल) मे विवाह नही हो सकता है जैसे राठौड खांप का पुरुष, राठौड वश और उसकी शाखा या प्रशाखा की कन्या से विवाह नही कर सकता है परन्तु राजपूत जाति के अन्य वशो मे कर सकता है अर्थात् इस जाति मे एक्सो-गेमस यानि विवाह मे निज वश के टालने का रिवाज है। उत्तराधिकारी केवल पुरुष ही होता है। मगनी-सगाई के मौके पर दोनो ओर के लोग अपनी बिरादरी के सामने अफीम गलाते हैं और उपस्थित लोगो को पिलाते हैं। इसके बाद सगाई पक्की समझी जाती है।

विवाह के लिये दुल्हा अपनी बरात के साथ दुल्हन के घर जाता है। राजा महाराजाओ की शादी जब कभी उनके आश्रित जागीरदार या कम हैसियत वाले कन्या के साथ होती है तब कन्या वाले की तरफ से डोला पेश होता है अर्थात् उस कन्या को वर के निवासस्थान पर पहुँचा कर वही विवाह की रीति पूरी की जाती है।

1. जोधपुर राज्य की ओर से प्रकाशित "मारवाड़ की कौमों की उत्पति व इतिहास" पृ 44 (सन् 1891 की जनगणना)।

राजपूत जाति मे जब किसी मनुष्य का देहान्त हो जाता है तो उसको पलग से जमीन पर ले लेते है और उसके ललाट, बाह और कठ पर चन्दन का तिलक किया जाता है। पश्चात् यदि यह व्यक्ति धनी होता है तो उसकी मृत्यु समय उसे पद्मासन बैठा देते है और नहलाकर चादर ओढा देते है। साधारण लोगो मे मृतक पुरुष को सुला दिया जाता है। धनी लोगो मे सिर्फ मृत पुरुषो को ही विमान (बैकुण्ठी)[1] मे बिठला कर गाजे बाजे से मरघट ले जाते हैं। शव के आगे प्राय रुपये पैसे आदि की बखेर[2] (बौछार) ऊट सवारो द्वारा की जाती है। साधारण लोगो को सुला कर और सब अँग मय मुँह के ढक कर दो बाँसो को रथी (सोढी) मे कस कर श्मशान मे ले जाते हैं। दाह क्रिया के बाद जब कभी मौका मिलता है तब भस्मी (राख) और फूलो (हड्डिया) को आस पास की नदी या हरिद्वार (गगा नदी) मे डाल देते हैं। मृत्यु सूचक शोक मे भाई, लडके व नौकर अपनी दाढी व सिर मुँडवाते है तथा सफेद पगडी पहनते है। यह शोक 12 दिन तक साधारणतया मनाया जाता है, जिसमे आसपास के रिश्तेदार व मित्र सहानुभूति प्रकट करने के लिये आते है। बाहरवे दिन यथाशक्ति दान पुण्य कर स्वजाति लोगो को भोजन खिलाया जाता है। निकट सम्बन्धी लगभग एक वर्ष तक कोई त्यौहार नही मनाते है और शोक सूचक सफेद या पक्के रग की या आसमानी पगडी पहनते है। पुरुषो की भाँति ही स्त्रिया भी शोक मनाती है। स्त्रिया मृतक का नाम लेकर ज्यादा ही रोती है और कभी कभी तो उनका रोना ढोग की हद तक पहुँच जाता हैं। विवाह तथा मृत्यु के ये रिवाज सामान्यत और जातियो मे भी प्रचलित है।

अन्य कुछ जातियो का विवरण इस प्रकार है —

ब्राह्मण—राजपूतो के बाद सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण जाति ब्राह्मणो की है। ब्राह्मणो मे श्रीमाली, दाधीच, पुष्करना, पालीवाल, पारीख, खण्डेलवाल आदि आते है। इनका धन्धा पूजा पाठ के अलावा

---

1 बैकुण्ठी यह एक छतरीदार ठाकुरजी (देवमूर्ति) के सिंहासन के जैसा लकड़ी का ढांचा होता है जो उसी समय तैयार किया जाता है। इसमे मृत पुरुष को पद्मासन मे बिठला कर गाजे बाजे से मरघट ले जाते हैं।

2 बखेर (उछार) यह राजस्थान की एक प्रथा है। किसी जागीरदार, रईस या धनी की मृत्यु समय पर ऊँट पर रुपये पैसे और कौडियों के थैले भरे जाते हैं और सवार लोग आगे आगे चलनेवाले मेहतर और भिखारियो का घर से लेकर कुछ दूर तक लुटाते रहते हैं।

व्यापार व खेती हैं। ये ज्यादातर वैष्णव धर्मावलम्वी हैं लेकिन शैव व शाक्त भी काफी है। इनमे विधवा विवाह व तलाक पूर्णतया वर्जित है।

वैश्य—इनमे ओसवाल, सरावगी, अग्रवाल, महेश्वरी आदि आते है। ओसवाल अपने को मूलत: राजपूत वताते है तथा अपना मूल स्थान ओसिया (जोधपुर राज्य) वतलाते हैं। इसमे वैष्णव व जैन धर्मावलम्वी होते है। ज्यादातर लोग व्यापार करते है लेकिन राजकीय सेवा मे भी काफी लोग हैं, इनमे कई गौत्र है, यथा मुहणोत, भण्डारी, डागा, राका नाहर पटवा, छाजेड आदि। इनमे विधवा विवाह व तलाक पूर्णतया वर्जित है। वैश्य व्यापार व लेनदेन का कारण सभी जातियो के सम्पर्क मे ज्यादा ही आते है। इस कारण सभी जातियाँ इनसे डरती है। तब भी आदर भी काफी करती हैं। यो इनको सामान्य लोग वणिये कहते हैं। वैश्यों ने व्यापार व उद्योग धन्धों मे काफी ख्याति व धन अर्जित किया है। राजस्थान के वैश्य भारत के कोने कोने मे जा वसे है और वहा उद्योग धन्धे फैला रखे है। अपनी आर्थिक स्थिति ठीक होने के कारण ये लोग सामाजिक कार्यो, मन्दिरो, धर्मशालाओं पाठशाला और अस्पतालो आदि के लिये काफी दान देते रहते है।

काश्तकर जातिया—यो राजस्थान की प्रत्येक जाति काश्त करती है लेकिन कुछ जातिय-जाट, गुजर, माली, कलवी, सिरवी, पीटल, धाकड आदि का मुख्य धन्धा काश्त है। काश्त का धन्धा आर्थिक दृष्टि से लाभदायक धन्धा नही है। लगभग सभी काश्तकार ऋणग्रस्त हैं। भूमि के उपजाऊ न होने, सिचाई की सुविधायें कम होने, अकाल पडने, अनुचित लाग वागो की वसूली, लगान ज्यादा होने, शादी विवाहो व ओसर मोसर पर ज्यादा ही अपव्यय करते रहने के कारण काश्तकार जातियां आर्थिक दृष्टि से गरीव मानी जाती हैं।

जाट—भारत मे ३६ राजवशो मे जाट जाति भी आती है। यह अपने को यदुवशी बतलाते है। जाटो मे पूनिया तथा गोदारा सवसे पुराने है। *राजस्थान में ये सवसे पहले वीकानेर व जैसलमेर राज्य मे आकर वसे थे।* वीकानेर के सस्थापक राव वीका को इन्होने राज्य स्थापित करने मे वडी सहायता की थी। जाट लोग वाद मे राजस्थान के विभिन्न भागो मे फैल गये।

अहीर—अहीर शब्द सस्कृत के 'आभीर' शब्द से निकला है जिसका अर्थ होता है दूध वाला। अहीर अपने को कृष्ण के पालक-पिता नन्द के वशज वतलाते है। यह शाति प्रिय काश्तकार जाति हैं। रेवाडी के अहीर नन्दराज,

जो औरगजेब का समकालीन था, के कब्जे मे कभी 360 गाव थे लेकिन अग्रेजो ने इनसे 315 गाव छीन लिये। ई० सन् 1857 के विद्रोह के वक्त शेष 45 गाव भी जब्त कर लिये। अब ये केवल काश्त पर निर्भर हैं। यह वैष्णव धर्मावलम्बी जाति है।

गुजर—यह एक क्षत्रिय जाति है। जो पहले गुर्ज से लडने मे सिद्धहस्त होने के कारण गुर्जर कहलाई। अब भी इस जाति के लाग लकडी के नीचे लोहे का ठास पोला 'गुर्ज' लगाते है। सातवी शताब्दी मे इनका राज्य पजाब, राजस्थान व गुजरात के काफी भाग पर था। ग्यारहवी शताब्दी मे इनका राज्य अलवर पर भी था। तब इनकी राजधानी राजोर गढ थी। ये कन्नोज के राजा महिपाल (क्षितिपाल) के सामन्त थे। कई लेखक इनको सूर्य वशी क्षत्रिय मानते है। राजस्थान के राजाओ मे राजकुमारो को दूध पिलाने के लिए गुर्जर महिला को धाय रखा जाता है। इन लोगो का मुख्य पेशा काश्त करना तथा पशु पालन हैं।

माली—माली जाति विभिन्न नामो-मालाकार, बागवान सैनी सैनिक क्षत्रिय आदि नामो से पुकारी जाती हैं। जिस प्रकार राजवशो मे गुर्जर महिला राजकुमारो को दूध पिलाने को रखी जाती है वैसे ही इस जाति की महिलायें भी राजवशो मे धाय रखी जाती हैं जिनके पुत्र धाय भाई कहलाते है। ये लोग पहले क्षत्रिय थे लेकिन शहाबुद्दीन गारी के समय से इन्होने बागवानी का पेशा धारण कर लिया। इस जाति की शाखाएँ राजपूतो जैसी ही है, यथा—कछवाहा, पडिहार, सोलकी, गहलोत, साखला, भाटी राठौड, चौहान, तवर, देवडा, परमार दहिया आदि।

चमार—यह जाति चर्म का काम करने के कारण चमार कहलाई। जितनी उपयोगी यह जाति है उतनी शायद ही कोई हो। ये न केवल गाय, भैंस, बैल आदि के मरने पर खाल उतारते है बल्कि उसे रगते भी है तथा उसके जूते, चडस आदि बनाते है। गाव मे ये गोबर इक्ट्ठा करना, आंगन लीपना, घास, लकडी आदि इक्ठा करना भट्टियाँ खोदना, दूसरे गाव मे न्योता देना, तथा गाव की बेठ‌बेगार निकालने का काम भी करते रहत हैं। सरकारी कर्मचारियो की जितनी सेवा यह करते है उतनी शायद ही कोई जाति करती हो। इनकी आर्थिक व सामाजिक दशा गिरी हुई है। चमार जाति को मुसलमान होने से रामदेव तवर (रामशाह पीर) ने बचाया था। उसकी यह बडी पूजा करते हैं। इस जाति को अछूता मे गिना जाता है।

मीणा—ये लोग जयपुर राज्य के, कछवाहा राजपूतो द्वारा अधिपत्य जमाने के पहले, यहा के शासक थे। अभी भी राजपूत समाज मे इनका आदर किया जाता है। राजपूत इनके हाथ का खाते पीते है। मीणो की दो श्रेणिया हैं–काश्तकार व चौकीदार। चौकीदार मीणा अपने को ऊँचा मानकर काश्तकार मीणो मे अपनी लडकी नही देते हैं। या इन चौकीदार मीणो से सभी घबराते है व इनको चौकीदारी की लाग देते रहते है। ये समय पडने पर दूर दूर तक लूटमार कर आते हैं। मीणा के ३१ गोत्र है। सूसावत मीणो का आमेर मे पहले राज्य था। मीणे डकैती के लिये बदनाम है लेकिन अब इनमे धीरे धीरे सुधार हो रहा है।

भील—भीलो की ज्यादा बस्तिया मेवाड, डूंगरपुर, बासवाडा व प्रतापगढ राज्यो मे है। भील एक स्वामीभक्त जाति है। इनका मुख्य धन्धा खेती बाडी व मजदूरी करना है। इनमे बहुविवाह ज्यादा होता है। इनमे नात की भी प्रथा है। बडे भाई की मृत्यु हो जाने पर विधवा अपने देवर का चूडा पहन लेती है।

भाट—ब्राह्मणो और राजपूतो की वशावली रखना इनका काम है। यो ये अन्य जातियो की भी वशावलिया रखते है। ब्राह्मणो और राजपूतो के भाट राव भी कहलाते है। भाटो मे ब्रह्म भाट भी होते है जो अपने को गौड ब्राह्मण बतलाते है और अन्य भाटो से ऊचा मानते है। कुछ भाट स्त्रिया की भी वशावलिया रखते है जो राणीमगा भाट कहलाते है।

चारण—राजपूतो की भाति चारण अपनी दैवीय उत्पति बतलाते है। ये देवी के पूजक है और उसके नाम से गले मे काला डोरा बाधते है। चारणो की तीन शाखायें हैं—मारू, काछेला और तिवारी। मारु चारण राजपूत नरेश की सेवा मे रहते है और साहित्य सेवा के लिए प्रसिद्ध हैं। इनको काफी जागीरे मिली हुई है। इनकी जागीरे मृत्यु होने पर सभी भाइयो मे बराबर बट जाती है। इस कारण जागीरो का 'चारणिया बट' प्रसिद्ध है। इनके विपरित राजपूतो की जागीरो मे ज्येष्ठ पुत्र ही उत्तराधिकारी होता है। शेष भाईयो को जीविका मे थोडी थोडी भूमि दे दी जाती है। काछेला चारण व्यापारी होते है। इनमे अपनी माता के गौत्र मे विवाह करने का रिवाज हैं। प्रसिद्ध भी है—'मामा की धी, खिचडी मे घी" तिवारी चारण मूलत श्रीमाली ब्राह्मण थे जो जालोर के कान्हड देव के समय चारण बन गये। मारू और काछेला चारणो का इनके साथ खान-पान नही हैं।

मेर—मेरो का उत्पति स्थल अजमेर मेरवाडा का पहाडी क्षेत्र मेरवाडा है। इस जाति के लोग पृथ्वीराज चौहान के पुत्र गौड लाखन के वशज है। गौड लाखन ने बून्दी की एक मीणा स्त्री से विवाह किया था और इस सम्बन्ध से मेरो की उत्पति बतलाई जाती हैं। इनकी कई उपजातिया बरार, चीतार, मेरात आदि है। पन्द्रहवी शताब्दी के लगभग इनमे से अधिकाश ने मुस्लिम धर्म अपना लिया। मेर सामन्यत विश्वास पात्र, सहृदय और उदार होता है। उसका मुख्य पेशा खेती हो रहा है लेकिन आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण ज्यादानर लूट-खसोट पर निर्भर रहने लगे। ये लूटमार मे भी ब्राह्मण स्त्री, सन्यासी पर हाथ नही उठाते है। मेरवाडा क्षेत्र से होकर कई व्यापारिक मार्ग निकलते थे। इस कारण वहा शाति व्यवस्था स्थापित करने हेतु मध्य काल मे मेरो को दबाने के कई प्रयत्न जयपुर, उदयपुर तथा जोधपुर राज्या ने किये लेकिन वे असफल रहे। शाति व व्यवस्था उन्नीसवी शताब्दी में ही अ ग्र जा द्वारा की जा सकी। अग्र जा द्वारा प्रशासन स्थापित करने के पूर्व यहा कन्या हत्या, महिलाओ की बिक्री आदि का रिवाज था। बेटा अपने पिता की मृत्यु हो जाने पर अपनी माता तक को बेच देता था। इनमे दास प्रथा भी थी। दास-दासियो का क्रय विक्रय होता था। अग्रेजो ने ये सामाजिक कुरीतिया काफी सीमा तक बन्द कराई।

सहरिया—यह एक वनवासी जाति है जो कोटा राज्य मे मुख्यत रहती है। कर्नल टॉड ने सहरियो को मीणा, भील और गुजरो की भाति राजस्थान के आदिवासी बतलाया है। इनका रहन-महन भीलो की भाति ही हैं। इनमे कई गोत्र राजपूता के समान हैं यथा चौहान, देवडा सालकिया, बाघेल आदि। उनमे मासाहारी ज्यादा है। इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नही है। ये अधिकतर भूमिहीन है तथा मजदूरी कर अपनी जीविका चलाते है। जगलो से लकडी व घास लाकर व कोयला बना कर भी बेचते है।

गरासिया—यह जाति मारवाड के दक्षिण पूर्वी भागा व सिरोही राज्य में वास करती है। यो यह अपना मूल स्थान मेवाड व अपने को राजपूतो का वशज बतलाते है। इनमे कई गोत्र राजपूतो के समान हैं, यथा चौहान, सोलखी, परमार आदि। इन लोगो मे विधवा विवाह, तलाक, बहु विवाह आदि होता है। लडके लडकियो में प्रेम विवाह होते है।

डामोर—बासवाडा राज्य मे गुजरात की सीमा पर पाई जाने वाली यह वनवासी जाति भी अपनी उत्पत्ति राजपूतो से बतलाती हैं। इनके कई

गोन राजपूतो से मिलते जुलते हैं। ये लोग मालाड़ागी व [illegible] हैं। इनका मुख्य पेशा खेती हैं। इस जाति के पुरुष [illegible] गहने पहनने के शौकीन हैं। इनका अन्य [illegible] सम्बन्ध या खान-पान नही होता है।

कंजर—कंजर नाम संस्कृत शब्द '[illegible]' कानन्चार का अर्थ होता है जगलो मे विचरण [illegible] चोरी, डकैती व लूट मार मे ज्यादा विश्वास [illegible] वेश्यावृत्ति करती हैं। ये गाने व नाचने मे [illegible] संख्या अजमेर, अलवर, उदयपुर, कोटा, बून्दी [illegible] ज्यादा है। कंजर औरत घाघर के बदले [illegible] पहनती हैं। यह रगीन छापल कपड़े का [illegible] तथा शराब प्रिय हैं। स्त्रिये व बच्चे [illegible] है। विवाह मे वर वधु का [illegible] २ हजार रूपये तक देने पड़ते हैं। इस जाति मे [illegible] हैं। तलाक दोनो पक्षो मे से कोई भी [illegible] मागता है तो वह वधु का मूल्य वापस नही [illegible] मामले जातीय पचायत द्वारा स्वीकृत किये [illegible] है। मरते समय व्यक्ति के गले मे शराब [illegible]

जोगी—यह जाति योग करने के लिये [illegible] कारण योगी (अपभ्रंश जोगी) कहलाये। [illegible] धर्मावलम्बी हैं। ये कनफटा साधु भी [illegible] छेद करा कर दात या हड्डी के गान [illegible] शादी होती है लेकिन अब ये लोग विवाह [illegible] भी कहलाते हैं। ये गाव मे शिव मन्दिर [illegible]

बलाई—यह अछूत जाति चमारो [illegible] जाती हैं। इनका मुख्य धन्धा कपड़ा [illegible] करते हैं या खेतीहर मजदूर हैं।

बिश्नोई—मूलत बिश्नोई एक धर्म [illegible] थे। न केवल हिन्दू बल्कि मुसलमान [illegible] बाद ये एक जाति बन गई हैं। इस पथ [illegible] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य [illegible] जाति के ज्यादातर लोग है लेकिन [illegible]

का मुरय प्रवर्तक जाम्भेश्वर (जाभा) था जिसका जन्म सन् १४५१ मे पीपासर मे हुआ था। इसके पिता का नाम झावर था जो पवार राजपूत था। जाभा विष्णु का अवतार कहा जाता है। उसके द्वारा बतलाये २६ उपदेशो को मानने वाले ही बिश्नोई (बीस और नौ) कहलाये। विश्नोई मृतक को गाडते है अन्यथा उनके सभी रीति रिवाज हिन्दुओ के समान है।

राजस्थान के 1 12,25 712 लोगो मे से 15 56 305 व्यक्ति यहा के 145 कस्बो व नगरो म तथा 96 69 407 व्यक्ति यहा के 33 668 गावो रहते हैं। प्रति वर्गमील औसतन 87 मनुष्य रहते हैं। यहा के लोगा की सख्या जातिवार इस प्रकार है — अग्रवाल 1 83,754 वणजारा 23 409 चारण 35 548 छीपा 25,498 डवगर 696 दादूपन्थी 6 122 डाकात 27, 353 डागी 50 898 दरोगा 1 77,104 दर्जी 47,398 धाकड 96 158 धानक 30 735 हूमड 10 541 जाट 10 42,153 जोगी 76,?04 काछी 60 510 कहार 15,143 कलाल 42,876 कुम्हार 3 57 751 कुनबी 57 815 लखारा 10 966 लोधा 48 503 लोहार 67 391 महेश्वरी 81 819 माली 3 69 173 मव 1 67 530 मीणा 6 07 369 मिरासी 1 568 नाई 1 66 096 नायक 62 329 ओसवाल 1 97 460 पालीवाल 4 362 पटेल 55,867 पोरवाल 29 359 पुरोहित 45 308 रायगर 1 30,104 राजपूत 6 33 830 राणा 10 035 रगड 24,091 रावत 27 804 रेबारी 1 35 820 साद 29 044 साधु 66 597 सरावगी 32 648 सिरवी 53 611 साधिया 34 257 सुनार 73 455 स्वामी 44 937 थोरी 38 783 भोई 10 340 ढोली 30 862 बिसनोई 69 873 ब्राह्मण 8 54 634 गाछा 14 575 गडरीया 77 370 गरुडा 86 99 गुजर 5 26 791 कायस्थ 23 165 खण्डेलवाल 48 435 खाती 2 09 937 कीर 23,980 ओड 7,757 तेली 49 500 सिलावट 4 ?44। मुसलमानो मे भिश्ती 23 949 बिसाती 3 384 बोहरा 15 302 फकीर 54,859 जुलाहा 17 087 कॅंमखानी 35 686 खानजादा 8 674 मणीहार 7 082 पठान 1 19 803 पींजारा 26 388 रगरेज 16 128 शेख 2,10 499 सिलावट 9,532 सिन्धी 43 588 तेली 30 495 मिरासी 15,483 छीपा 7,553 लखारा 2 019 लोहार 13 659 मकराणी 1 320 धोबी 5,049 और ढोली 4,710 है।[1]

1 (सेन्सेस आफ इण्डिया 1931 जिल्द 27 राजपूताना एजेन्सी)।

अछूत जातियाँ

हिन्दुओ की जातियो का वर्णन करने के साथ ही उन जातियो का उल्लेख करना अनुचित नही होगा जिन्हे (हरिजन) समझा जाता है। राजस्थान के 1,001,50,251 हिन्दुओ मे से 17,57,374 अछूत (हरिजन) समझे जाते है।* अर्थात हिन्दुओ मे से 16 प्रतिशत अछूत है। इन हरिजनो का जातिवार‡ ब्योरा इस प्रकार है —

1 चमार	7,66 643	4 मेहतर (भगी)	92,747
2 मेघवाल[1]	4 24 900	5 खटीक[3]	59,502
3 रैगर[2]	1 30 103	6 ढोली[4] (दमामी)	39,999

1 इनमें से 2,18,857 बलाई और 1 62,863 भाबी है।

2 ये बीकानेर मे रगिया और मेवाड मे बुला कहलाते हैं।

3 ये चमडा रगते हैं और कई शराब और मास भी बेचते हैं। इससे ये हिन्दू कसाई भी कहलाते हैं। सिन्ध मे ये लोग अपने को कलाल (कलवार) कहते हैं।

4 ये जोधपुर मे नक्कारची व डूम तथा जयपुर मे राणा और हाडोती मे बारहट कहलाते हैं। (देखो महाकवि सूर्यमल चारण कृत वश भास्कर तृतीय भाग पृष्ठ 79)।

* यह जनसख्या सन् 1931 म थी। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार कुल अछूत 40 75 580 है अर्थात् 2 30 93 895 हिन्दुओ म से 17 6 प्रतिशत अछूत माने जाते हैं।

‡ अब अछूतो को नया नाम 'अनुसूचित जातियो' भारतीय सविधान के अनुसार दिया गया है। सविधान के अन्तर्गत दिय गये सविधान (अनुसूचित जातिया) आदेश 1950 म निम्न जातिया अनुसूचित जातिया (अछूत) बतलाई गई है —

1– अजमेर जिला सिरोही जिले के आबूरोड ताल्लुका और झालावाड जिले के सुनेल टप्पा के सिवाय सारे राज्य म —

1– आदि धर्मी 2– अहरी 3– बादी 4– बागरी
5– बैरवा या बेरवा 6– बाजगर 7– बनाई 8– बासफोड
9– बर्गी, बर्गी बिरगी 10– बावरिया 11– बडिया या बेरिया
12– भाड 13– भगी 14– बिदाकिया 15– बोला
16– चमार भाभी जटाव जटिया, मोची रेदास रेगर या रामदासिया 17– चाँडाल
18– चूडा 19– डाबगर 20– धानकिया 21– ढड 22– डाम 23– गडिया
24– गराचा मेहतर या घाचा 25– गरो गरूडा य गुडो 26– गवारिया

7. धोबी	38,783	13. बागडी[4]	10,597
8. धाणका[1] (वर्मी)	32,326	14 गुरड़ा[5]	8,699
9. सरगरा	31,300	15 सामी	7,147
10. थोरी[2]	20,388	16 नट	6,416
11 मोची[3]	22,102	17 बावरी	5,945
12 कोरिया (कोलीव)	11,303	18 गाछा (बासफोड)	5,698

1. ये अपने को धनुषधारी साधुओं मे से बताते हैं और अपना वतन विल्ली कहते हैं। स्त्री पुरुष गलियों मे झूठन मांगते फिरते हैं। इससे भंगी भी इनसे परहेज करते हैं। (देखो मारवाड की कौमों की उत्पत्ति व इतिहास, तीसरा हिस्सा पृष्ठ 582 सन् 1891 ई. मर्दुमशुमारी)। जयपुर मे ये लोग वर्मी भी कहलाते हैं। 1,563 वर्मी भी इस संख्या मे शामिल हैं।

2. ये बाहुडी तथा नायक भी कहलाते है। इस संख्या में 1 204 बाहुडी भी शामिल है।

3 इनमे से 175 ने अपने को जीनगर 45 ने चन्नीगर और 66 ने जटाव दर्ज कराया है। ये सब एक ही है और आपस मे ब्याते हैं।

4 खेतों की चौकीदारी करने वाली एक कौम।

5 मेघवाल कौम के गुरु हैं जो उनके विवाह आदि संस्कार कराते है और अपने को जोशी ब्राह्मण समझते है। सीथल (बीकानेर) के रामस्नेही पंथ के आदि गुरु महात्मा हरिरामदास इसी गुरड़ा जाति के थे। मेघवालों के साधु कामडिया कहलाते हैं। जो मय स्त्री तम्बुरे पर गाते फिरते हैं। ये मेघवाल कौम ही से है।

27- गोधी 28- जीनगर 29- कालबेलिया 30- कामड या कामडिया 31- कंजर 32- कापडिया मासी 33- खंगार 34- खटीक 35- कोली या कोरी 36- कूचबन्द 37- कारिया 38- कुंजर 39- मदारी या बाजीगर 40- मजहबी 41- मेघ या मेघवाल 42- मेहर 43- मेहतर 44- नट 45- पासी 46- रावल 47- सालवी 48- सासी 49- सांटिया 50- सरभंगी 51- सरगरा 52- सींगीवाला 53- थोरी या नायक 54- तीरगर 55- वाल्मीकी

2- अजमेर जिले मे —

1- अहेरी 2- बागरी 3- बलाई 4- भांभी 5- बासफोड 6- बावरी 7- बार्गी 8- बाजीगर 9- भंगी 10- बिदाकिया 11- चमार, जटाव, जटिया, मोची या रेगर 12- डावगर 13- धानक 14- ढेड 15 धोबी 16- ढोली 17- डोम 18- गरोडा 19 घाचा 20- कबीरपंथी 21- कालबेलिया 22- खानगर 23- खटीक 24- काली

19. महार	5,362	27 डबगर (ढालगर)	652
20 गवादिया	5 354	28 बाजीगर	372
21 कालबेलिया (सपेरा)	3,740	29 कुचबध	326
22 कजर	3,553	30 सींगीवाला	203
23 खगार	2,925	31 बोदकिया	63
24 सांटिया	1,103	32 पासी[1]	43
25 तीरगर	708	33 सरभंगी	23
26. रावल	677		

1 सूअर पालने वाली एक कौम।

25- कोरिया 26- कुचबन्द 27- मेहर 28- मेघवाल 29- नट 30- पासी 31- रावत 32- सरभंगी 33- सरगरा 34- सांटिया 35- थोरी 36- तीरगर 37- कजर 38- सांसी।

3- सिरोही जिले का आबूरोड तालुका —

1- अगेर 2- बाकड या बन्ट 3 भांबी, भाभी, असादरू, असोदी, चमाडिया चमार, चाम्भार, चामगार, हरला, हराली, खालपा, माचिगार, मोचिगार, मादर, मादिग, तेलगू मोची, कामाटी मोची, राणीगर, रोहिदास, रोहित या समगार 4- भंगी, मेहतर, ओलगना, रूखि, लालबेगी, वाल्मीकी, कोरार या झाडमल्ली 5- चलवादि या चन्नय्या 6- चैनदासरु या होलेय दासर 7 ढोर, कक्कय्या या कन्कैया 8 गराडा या गरो 9- हल्लीर 10- हल्सार, हसलार, हुलस्वार या हलस्वार 11- हालार या वल्हार 12- होलिया या होलेर 13- लिंगाडेर 14- महार, तराल या धेगू मेगू 15 माहयावशी, ढेड, वणकर या मरुवणकर 16- माग, मातग या मिनिमादिग 17 मग गारुडी 18- मेघवाल या मेघवार 19- मुक्री 20- नाडिया या हाडी 21- पासी 22- शेनवा, चेनवा, सदमा या रावत 23- तीरगर या तीरबन्दा 24- तुरी।

4- झालावाड़ जिले के सुनेल टप्पा मे —

1- बागरी या बागडी 2- बलाई 3- बनचडा 4- बरहार या बसोद 5- बरगुंडा 6- बेड़िया 7- भंगी या मेहतर 8 भानुमती 9- चमार, बैरवा, भांबी, जटाव, मोची या रैगर 10 चीडर 11- धानुक 12- डड 13- डोम 14- कजर 15- खटीक 16- कोली या कोरी 17- कोनवाल 18 महार 19- माग या माग गारोडी 20 मेघवाल 21 नट, कालबेलिया या सारा 22- पारधी 23- पासी 24- सांसी 25- सरभंग।

इन हरिजनो की दशा रियासतो मे बडी शोचनीय है। जो सामाजिक अत्याचार इन पर होते है। उनका वर्णन यहा नही किया जावे तो उचित ही होगा। इतना लिखना जरूरी है कि इतनी बडी सख्या के लोगो को सुधारने का घ्यान किसी भी राज्य को नही हुआ है। जितने अत्याचार इन लोगो पर समाज से होते है, राजकर्मचारियों द्वारा उनसे कम नही होते है। इन लोगो पर अत्याचार तुरन्त ही बन्द हो जाते है जब वे मुसलमान या ईसाई धर्म ग्रहण कर लेते है। यही कारण है कि धीरे-धीरे हरिजन लोगों की सख्या कम होती जा रही है। आधुनिक जागृति इस धर्म परिवर्तन मे उनको और भी सहायता देगी क्योकि ये लोग अपने ऊपर किये जानेवाले अत्याचारो को समझने लगे है और धर्म परिवर्तन के लाभ जानने लगे है। हरिजनो पर उच्च हिन्दुओ का दुर्व्यवहार और उनकी कुम्भकर्णी की नीद इस परिवर्तन मे गहरी सहायक प्रमाणित हुई है।

जैसी दशा अछूत जातियो की है वैसी दशा वनवासी जातियो (भील, मीणा, मेर, सहरिया, गिरासिया, डामोर आदि) की है।[1]

आबूरोड तालुका सन् 1956 के पूर्व महाराष्ट्र म तथा सुनेल टप्पा मध्यप्रदेश मे मिला हुआ था। अत सन् 1950 के आदेश म जो जातिया महाराष्ट्र तथा मध्य-प्रदेश मे अनुसूचित जातिया घोषित की गई वे ही अब भी घोषित रही। इनमे से कई जातिया राजस्थान मे नाममात्र की है।

(1) राजस्थान म भील भीलमीना, डामोर (डामरिया), गरासिया (राजपूत गरासियो को छोड कर) मीणा और सहेरिया (सेरिया) को भारतीय सविधान (अनुसूचित जनजातियाँ) आदेश १९५० जारी कर सरकार ने आदिम जातिया (जन जातिया) माना है। सिरोही जिले का आबूरोड तालुका सन् १९५६ तक बम्बई प्रात से तथा झालावाड जिले का सुनेल टप्पा मध्य प्रदेश मे मिले हुए थे अत सन् १९५० मे उन राज्यो म घोषित जन जातिया अब राजस्थान म सम्मिलित हो जाने पर भी यहा की जनजातिया माना गया है। इनम कई जातियां नाम मात्र की है। आदेश मे वर्णित जनजातिया इस प्रकार है —

I– अजमेर जिले, सिरोही जिले के आबूरोड तालुका और झालावाड जिले के सुनेल टप्पा के सिवाय सारे राज्य मे —

1– भील 2– भील मीना 3– डामोर, डामरिया 4– गरासिया (राजपूत गरासिया को छोडकर) 5– मीणा 6– सेरिया या सहेरिया

नरेश

राज्य में सबसे ज्यादा प्रतिष्ठा व सम्मान नरेश व उसके परिवार को दिया जाता है। वह दैविक सम्पन्न माना जाता है। इन नरेशो मे गहलोत, कछवाहा, राठौड आदि राजवंश के तथा यादव भाटी आदि चन्द्रवंश के तथा चौहान (हाडा व देवडा) व परमार अग्निवंश के माने जाते है। जनता इनके दर्शन करने को लालायित रहती हैं। नरेश के पुत्र जन्म पर जनता प्रसन्न होती है तथा मृत्यु होने पर शोक मनाती है मानो उनके परिवार मे ही किसी बडे बुढ्ढे की मृत्यु हो गई हो। कई लोग नरेश या उसकी महारानी के स्वर्गवास पर अपना सिर, दाढ़ी आदि तक मुडवाते है, लेकिन अब कम ही लोग अपनी मर्जी से ऐसा करते है। इसका कारण है जनता का नरेश मे विश्वास रखने व प्रेम मे कमी आना है। जनता मे अब आर्य समाज के द्वारा सामाजिक जागृति लाने और कांग्रेस द्वारा राजनैतिक चेतना फैलाने के कारण नरेशो मे दैविक शक्ति होने का विश्वास घटना है। फिर भी ग्रामीणो मे अभी भी नरेशों के प्रति अगाध श्रद्धा है। अभी ग्रामीणो के लिये नरेश उनका "अन्नदाता" है।

2- अजमेर जिले मे.—

1- भील 2- भील मीना

3- सिरोही जिले के आबूरोड तालुका म —

1- बर्डा 2- बावचा या बामचा 3- भील गरासिया, धोली भील, डुंगरी भील, डुंगरी गरासिया मे वासी मिले रावल भील, तडवी भील, भगालिया, भिलाल पावरा, वासवा और वसाप सहित भील 4- चौधरा 5- तडवी, तैलरिया और वलवी सहित धारणका 6- धोडिया 7- दुबला-बिया या हलपति सहित दुबला 8- मावची, पाडवी, बसावा, वसावे और वलवी सहित गामीत या गामिटा या गावीता 9- गाड या राज गोंड
10- ढौर काथोडी या ढौर कातकारी और सोन कायोडी या सोन कातकारी के सहित कायोडी या कातकारी 11- कोकना, कोकनी, कुकना 12-- कोली-ढोर टोकरेकोली, कोयचा या कोलघा 13- चोलिवाला नायका, कपाडिया नायका मोटा नायका और नाना नायका सहित नायकडा या नायका 14- अडनीचिचेर और फासे पारधी सहित पारधी 15- पटेलिया 16- पोमला 17- राठवा 18- वारली 19- वीठोलिया, कोठोवालिया या बाराडिया

4- झालावाड जिले के सुनेल टप्पा मे —

1- गोड 2- कोड़ 3- सेहरिया

सामन्त

सामन्तो का प्रविर्भाव लगभग 1000 वर्ष पूर्व हुआ जब नरेश अपने सम्बन्धियो और अधिकारियो को इस कारण भूमि देने लगे ताकि उसके सैनिक अभियान ठीक प्रकार से चल सके। सामन्तो को दी गई भूमि या गावो पर सामन्तो का नियत्रण रहता था लेकिन शासन प्रबन्ध राजाओ का ही रहता था। इस कारण सामन्तो के गावो के निवासियो पर दोहरा शासन रहता था। इन सामन्तो के गाव जागीर के गाव कहलाते थे। इन सामन्तो को आवश्यकतानुसार राजाओ को सैनिक या आर्थिक सहायता देनी पडती थी। राजा की विजय या पराजय पर ही उसके सामन्तो को और भूमि मिल जाती थी या उसकी भूमि से अधिकार हट जाता था। मुसलमानो के राज्य काल मे बादशाहो की सेवा मे बराबर रहने व उनके लिए सैनिक अभियानो मे बराबर जाते रहने के कारण भी राजाओ को सामन्तो की सहायता की ज्यादा ही आवश्यकता पडने लगी। अत मध्य-काल मे सामन्तवाद पूर्णतया सुदृढ हो गया।

इस प्रकार सामन्तवाद पनपने से राजा को एक बडा लाभ यह था कि उसे बडी सेना नही रखनी पडती थी। जब भी उसे सेना की आव-श्यकता होती थी वह अपने सामन्तो को आदेश भेज देता और वे तत्काल अपनी सेना लेकर इकट्ठे हो जाते थे। राजा को इनसे आर्थिक लाभ भी था। नजराना, हुक्मनामा, रेख, चाकरी, खडगबन्दी, मातमी, मतालबा आदि तथा राजकुमार या राजकुमारी के विवाह पर भेंट आदि से, जो उस के सामन्त देते थे, राजा को अच्छी आय हो जाती थी। उत्तराधिकारी न होने या कोई सगीन अपराध करने पर सामन्त की जागीर भी नरेश द्वारा जब्त कर ली जाती थी। इस प्रकार राजा का सामन्तो पर न केवल निय-त्रण रहता था बल्कि उनसे आर्थिक लाभ भी मिलता रहता था।

मुगल साम्राज्य के पतन काल मे मरहठो से युद्धो आदि के कारण राजस्थान मे जो अराजकता फैली उसका लाभ उठाकर ये सामन्त उपद्रवी हो गये। उनकी मनमानी व अराजकता इतनी बढ गई कि राजा को चैन से सोना हराम हो गया और किसी सीमा तक उन्हे विवश होकर अग्रेजो से सन्धिया कर उनके अधीन होना पडा। इन सामन्तो ने न केवल राजाओ बल्कि अपनी जनता को भी तग करने मे कोई कसर नही छोडी। अधि-काश सामन्त अपनी जागीर मे छोटे राजा बन गये। वे अपनी प्रजा पर

मनमानी करने से चूकते नही थे। अपनी जागीर का प्रथम व्यक्ति होने से अपनी जनता के मूल अधिकारो को कुचलने मे अपनी शान समझने लगे। उनको कोई दूसरा आदमी उनकी बराबरी मे बैठना तक अच्छा नही लगने लगा। यहा तक कि दूसरे लोगो का घोडे पर बैठना तक अखरने लगा। इस कारण उनके सामने दूसरे व्यक्ति चारपाई पर बैठ नही सकता था और दूल्हा तक घोडे पर चढ नही सकता था। स्त्रिया जूता पहन कर उनके सामने नही निकल सकती थी। जनता मे बेगार लेने व लाग-बाग लेने मे तो कोई कसर नही छोडते थे।

सामन्तो से बढकर अत्याचारी उनके नौकर थे। उनके नौकर ज्यादा तर उनके ही दरोगे या गोले होते थे। हीनता के भाव से ग्रसित इन दरोगो का ग्रामीणो के साथ व्यवहार पूर्णतया अपमानजनक होता था। वे ग्रामीणो को तग करने मे कोई कसर नही छोडते थे। इन नौकरो की स्त्रिया गोलिया जागीरदारो पर डोरे डालती रहती थी और ये दरोगे गाव की पिछडी जातियो की स्त्रियो की इज्जत लूटने मे ही अपनी शान समझते थे।

जागीरदारो के गावो व उनकी भूमि की देख रेख व जागीरो का आय व्यय का लेखा ज्यादातर महाजन लोग देखते थे। ये भी जागीरदार को बेवकूफ बनाये रखने व काश्तकारो को तग करने से चूकते नही थे। वे न केवल जागीरदार बल्कि काश्तकारो को खूब लूटते थे। वे जागीरदारो को काश्तकारो को दबाये रखने के तरीके बतलाते रहते थे। जागीरदारो को छोटे नरेश बतलाकर, उनको सुरा और सुन्दरी के चक्कर मे डालकर अपने घर भरते रहते थ। उनकी तो यह इच्छा रहती थी कि—

ठाकर बालक होय, हुकम ठकराणिया।
गाव दुसाखियो होय, के बसती वाणिया॥
घर ही न्याव बताव, घर से तोलणा।
इतरा दे किरतार, फेर नही बोलणा॥

अर्थात्—ठाकुर छोटा हो और स्त्रिया (ठकुरानिया) की आज्ञा चलती हो, गाव (जागीर) मे दो शाखें (फसलें) उत्पन्न होती हो और महाजनो की बस्ती हो, अपने घर से ही तोलकर सामान दिया जाता हो और घर पर ही हिसाब-किताब से निर्णय करने का अधिकार हो। यदि इतना हमें ईश्वर दे दे तो फिर किसी बात की चाह शेष न रहे।

अधिकांश सरदारो की यह दशा देख कर अग्रेज विद्वान अवेरोध मैकी ने राजपूत सरदारो का हृदय-द्रावक चित्र इस प्रकार खीचा हैं.—

"वे ही राजपूत जो चन्द्र और सूर्य के वशधर कहे जाते हैं और जो अग्निकुल से उत्पन्न हुए है अब अपनी जाति विषयक उत्साह-पूर्वक रूढियाँ भूल गये है और मूर्खता तथा विलास-प्रियता के कारण ऐसे अकर्मण्य बन गये हैं कि जब उनके पूर्वजो की हैं और धर्मयुक्त वीरता, उनके बुद्धिमता-पूर्ण व्यवहारिक देश-प्रेम, समुचीत सस्कृति तथा उदारहृदयता का स्मरण करते हैं तो बडा दुख होता है। आज कल के राजपूत रईस अपनी मातृ भाषा मे लिखना पढना कठिन सा समझते हैं, उन्हे अपनी जाति, राज्य तथा राज्योचित कर्तव्य के विषय मे कुछ भी ज्ञान नही होना और वे अपना व्यक्तिगत जीवन ऐसे घृणास्पद व्यक्तियो की संगति मे खो देते है जो अपने दुर्गुणो के कारण सेवक शब्द को कलकित करते है। राजपूत सरदार शराब और अफीम के नशे मे चूर होकर घृणास्पद ढग और दरिद्रता की दशा मे रहा करता है। उसे अपने काम काज की कुछ भी सुध-बुध नही रहती है। वह अपने कामदारो तथा उसके सहायको पर ही अवलम्बित रहता है। वह ऋण मे भी बुरी तरह लदा रहता है किन्तु उसे किसी बात की चिन्ता नही रहती है। उसे इस बात की सदैव लालसा रहती है कि जब कभी कही वह जावें तो उसके राजपूती कुल के प्रति सम्मान-सूचना के रूप मे तोपो की सलामी हो, गलीचे के पावडे डाले जावे, उनके साथ घुड-सवार सैनिक हो और उसको यह भी हार्दिक अभिलाषा रहती है कि उसकी लडकियाँ बाल्यावस्था मे ही अपने से ऊँचे राजकुलो मे ब्याही जावें। यही नही, दशहरे के दिन वे यह आशा करते हैं कि अमीर व उमराव यथोचित रीति से उनको उपहार देते और अपनी राजभक्ति का परिचय दे।"

राजपूतो मे, विशेष कर बडे जागीरदार व राजाओ मे, यह प्रथा चली आती है कि कन्या का सम्बन्ध अपने से ऊँचे या बराबरी के घराने तथा धनी रईस से करें। इस बात की परवाह नही की जाती कि वर की शारीरिक व *विद्या-सम्बन्धी योग्यता ठीक है या नही ?* यहाँ तक हठ किया जाता है कि कही-कही कन्याओ को आजन्म, अविवाहिता रहना पडता है और यदि सम्बन्ध हुआ भी तो अनमेल, जिससे पासवानो का पासा तेज रहता है।

राजस्थान के इन राजपूतो के रीति-रस्मो को नियम-पूर्वक चलाने और वहाँ की अनेक सामाजिक बुराईयो को दूर करने के लिए कर्नल

वाल्टर (ए जी जी) ने स० 1945 की चैत्र वदि 13 को अजमेर मे एक सभा स्थापित की थी। दूसरे वार्षिक अधिवेशन पर 15 फरवरी को सन् 1889 ई० को इस सभा का नाम उन्ही के नाम पर "वाल्टर कृत राजपुत्र हितकारिणी सभा" रक्खा गया। देश मे अनेक राजा महाराजाओं के होते हुए भी, उन्हे अलग रखकर राजस्थान के ए जी जी उसके सदा के लिए स्थायी सभापति बनाये गये। इस सभा की शाखाएँ प्रत्येक राज्य मे अब तक प्रचलित है परन्तु उसका असर उतना नही पडा और राजपूत-समाज मे वैसी ही कुरीतियाँ चालू है। इन कुरीतियो के कारण ही विवाह आदि मे खर्च करने को पैसा न होने से इस जाति का सैकडो बालिकाए कवारी है। अनेक कन्याए पूरे स्त्रीत्व को पहुँच चुकी है किन्तु उनके विवाह का पता ही नही है। वे एक प्रकार से निराश हो चुकी है। बमेल विवाह के कारण सैकडो युवतियाँ असमय मे ही विधवाए बन कर समाज पर भार-स्वरूप हो गई है। सैकडो परिवार नष्ट हो गये। इस कारण यदि सभा के अधिकारी नियमो की कडाई का पूरा ध्यान रक्खे तो राजपूत समाज की स्थिति मे बहुत शीघ्र परिवर्तन आ सकता है। क्योकि उनके पास साधनो की कमी नही है केवल मार्ग प्रदर्शन की आवश्यकता है। सामाजिक कुरीतियो को दूर करना तभी सम्भव है जब स्वय राजा व प्रजा दृढता से कटिबद्ध हो परन्तु राजस्थान मे तो एक उल्टा ही ढग देखने मे आता है। यहाँ के अधिकाँश जागीरदार अशिक्षित और दुर्व्यसनो मे लिप्त है। वे प्राय स्वेच्छाचारी होते है, जिस पर यदि उन्हे राज्य से न्यायालय (जुडीशियल) के अधिकार भी मिल जाय तो करेला और नीम चढा वाली कहावत चरितार्थ होती है और उनके कुशामदी नौकर चाकर उन अधिकारों का मनमाना दुरुपयोग करते है। इससे उनकी प्रजा दुख ही पाती है।

जागीरदारो ने दीन-दुखी प्रजा से मनमानी कई लागो और वेठ वेगारो के नाम से रुपया लेना अपना धर्म और इस कठोरता से इकट्ठी की गई सम्पति को कुमार्ग मे उडाना अपना कर्म समझ रक्खा है। रियासतो की देखभाल ने इन जागीरदारो को और भी स्वेच्छाचारी कर दिया है और ये निरकुश होकर अपनी प्रजा पर अत्याचार करने मे कभी नही चूकते है। उचित होगा कि रियासत प्रत्येक जागीर मे एक पचायत नियत कर जो आय-व्यय का बजट बनाये और वह बजट उन रियासत मे प्रति वर्ष पास हो तथा उसके ही अनुसार प्रत्येक जागीर मे कार्य हो तब ही जनता सुखी होगी।

कही कोई जागीरदार राजकुमार कॉलेज मे पढ भी गये तो वे मोटर, पोलो, शिकार आदि के शौकिन बन कर निकलते है और प्रजारजन की वास्तविक शिक्षा से वचित ही रहते है। क्योकि कॉलेज मे पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करते। अग्रेजी भाषा को अग्रेजो की तरह बोलने के सिवाय कदाचित ही कुछ और सिखलाया जाता है। अधिकाश विद्यार्थी वहाँ के शिक्षण से अपने वश की उच्चता और धर्म के महत्व को भी नही पहचानते हैं और इस प्रकार प्राचीन हिन्दू आदर्श इनके सामने नही रहता है। दस वर्ष के शिक्षण से भो वे यह नही सीखते कि अपनी प्रजा के प्रति तथा अपने देश के प्रति उनके क्या क्या कर्तव्य हैं। प्रत्युत कई तो अनोख दुर्व्यसनो मे लिप्त हो जाते है जिसका प्रभाव आजीवन बना रहता है। वहाँ की शिक्षा के विषय मे ऐसा एक भी प्रमाण नही मिलता है कि जिसमे राजस्थान की सास्कृति झलकती हो। कितने राजकुमार लाठी, तलवार आदि चलाना जानते है और कितने सदाचार से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं ? कितने राज रत्नो और भावी मुकुट धारियो ने विदेशी राजकुमारो की भाति जहाजो पर कोयला झोक कर मेहनत मजदूरी द्वारा अपने सुकुमार शरीर को कठोर बनाने का साहस किया है ? यदि सच कहा जाय तो वहा केवल भक्ति-पूर्ण दरबारी या एपीकूरियन क्लब का मेम्बर होना ही सीख पाते हैं जैसा कि ग्वालियर महाराजा ने सन् 1918-19 की अपनी वार्षिक रिपोर्ट की आलोचना करते हुए इन जागीरदारो के विषय मे लिखा था—

"जागीरदार लोग केवल दरबार के सुन्दर साज है। हमारा यह प्रयत्न होना चाहिये कि जनता योग देकर वे काम मे लगे। ऐसा होने मे यूरोप मे कितने अच्छे परिणाम निकल है।"

राज कर्मचारी

राजस्थान मे राज कर्मचारियो की सख्या 3,01,671 है जिनमे से 59,289 सार्वजनिक सैनिक सेवा मे (सेना मे 29,049 व पुलीस दल मे 30,240) व सार्वजनिक प्रशासन मे 71,581 और अन्य महकमो मे 1,70 801 है। इनमे वकील भी सम्मिलित है जिनकी सख्या 1433 है।

वेगार, लाग बाग आदि से दबी हुई प्रजा के साथ राज्यो मे न्याय अच्छा होता हो यह सम्भव नही है। जिसका हाथ नरम है उसका काम

निकल जाता है और जो रीते हाथ है वे बरबाद होकर इन्साफ से मुह मोड़ लेते हैं। अधिकाश राज्यो मे घूसखोरी, अधेरशाही, पक्षपात आदि का दवदबा है। राजस्थान मे लम्बी व काफी परेशानियो के पश्चात् ही कही किसी को सच्चा न्याय और वह भी बडी लम्बी मुद्दत के बाद मिलता हैं। उन्नत कहलाने वाली रियासतो तक मे साधारण से मामलो के निर्णय मे युग निकल जाते हैं। सैंकडो मिसलें जेरतजवीज रहती हैं और इस दीर्घ सूत्रता मे फरीकेन की एकाध पीढी भी समाप्त हो चुकती हैं। कई राज्यो मे न्यायाधीश निरक्षर भट्टाचार्य हैं। गरीब और अमीर के साथ भेद भाव वाला पक्षपातपूर्ण न्याय अधिकाश राज्यो मे आवश्यकता से अधिक वदनाम हैं। कई रजवाडो मे वहा के ऊचे ऊचे कर्मचारियो मे प्रधानता प्राप्त करने के लिए दल वन्दियाँ होती है। वहाँ के न्याय और पुलिस विभाग भी इन दलबन्दिया से खाली नही रहते। जिस ओहदेदार का जोर होता है वह अपना काम निकलवा लेता है और अपने विरोधी के पक्ष वालो को कष्ट पहुँचा देता है। इसी प्रकार अपने से विरुद्ध पक्ष वालो को गुप्त धमकियाँ दी जाती हैं। झूठे-सच्चे मुकदमे खडे करके उनका दमन किया जाता है।

किसान

राजस्थानी किसान के जीवन की ओर दृष्टिपात करने पर भली भाति ज्ञात होता है कि ये लोग बडे ही सतोषी, अपने व्यवहार मे सच्चे, सादा जीवन बीताने वाले, मितव्ययी और स्वभाव से मेहनती होते है। वे केवल चाहते है--

नही मजू री खाट, के न चूवै टापरो।
भैसडलया दो चार, के दूजे वापडी ॥
वाजर हदा रोट, दही मे ओलणा ।
इतरा दै करतार, फैर ना बोलणा ॥

अर्थात् नये वानो (मू ज की रस्सी) से बनी हुई खाट और वर्षा मे न टपकने वाली फूस की झोपडी हो एव दो चार दूध देने वाली भैंसें हो तथा वाजरे के मोगरे (रोटी) दही के साथ खाने के लिये हो। यदि परमात्मा यह सब कुछ देता रहे तो फिर और किसी वस्तु की चाह नही है।

देहाती कन्या की इच्छाये भी अधिक नही होती है, जैसा कि कवि ने कहा है--

उठै ही पीरो होय उठै ही सासरो।
आथूणो हो खेत, चुवै नही आसरो ।।
नाडा खेत नजीक, जठै हल खोलणा।
इतरा दै करतार फेर काई बोलणा।

अर्थात् अपने पिता और श्वसुर का घर भी उसी गाव म हो और खेत पश्चिम मे हो (ताकि सुवह घर से रोटी लेकर खेत मे जाऊँ तब धूप मेरी पूठ (पीठ) की ओर हो और शाम घर को लौटू तब भी धूप मेरी पीठ पर हो। झोपडी मे वर्षा काल मे पानी न टपकता हो और तालाव खेत के पास हो जहा हल और वैल खोल लिये जाव और बैला को पानी पिलाने के लिये दूर न ले जाना पडे। इतनी वात परमात्मा देवे तो फिर और मागने की जरुरत नही है।

रूढिवादिता एव भाग्यवादिता से ग्रसित उनके प्राचीन दृष्टिकोण ने उन्हे सदा ही दीनता एव हीनता की असह्य स्थिति म बनाये रक्खा है। इसका स्पष्ट उदाहरण जोधपुर राज्य के मुसाहिब आला (प्रधान मन्त्री) दीवान बहादुर छज्जूराम के कुछ वाक्य हैं जो उन्होने अपन एक सस्मरण मे सन् 1918 ई० (वि० स० 1975) म ग्राम जीवन की करुणाजनक स्थिति का चित्रण करते हुये लिखे थे --

"किसी भी खालसा गाव व उसके निवासियो का वर्णन बिना बेगार प्रथा का हवाल दिये पूर्ण नही हो सकता है। इस बेगार प्रथा ने ग्राम्य जीवन को नीरस वना रखा है। इसके कारण ग्रामीणो को अपना गाव तक छोडकर पडौसी जागीरदार की शरण म जाना पडता है। जब कोई सरकारी अहलकार गाव मे आता है तब गाव वाला को उसके प्रत्येक सिपाही व चपरासी को बेगार देनी पडती है। मना करने पर बेगारियो की चपतो व जूतो से पिटाई होती है। उन अहलकारो की सवारी के पशु किसानो की हरी फसल को खा जाते है। यही नही निर्धन काश्तकार (किसान) के विरोध करने पर उस झूठमूठ दोष लगा सरकारी अहलकार द्वारा कैद कर लिया जाता है और उसे तब तक नही छोडा जाता जब तक कि उसका बोहरा (साहूकार) धन लेकर उसे छुडाने न आवे।'

इस प्रकार राजस्थान के किसान पीढियो से मस्त वेगार, पचासो अजीव लागें (करो) और भारी लगान और मन माने राजनैतिक जुल्मो की चक्की मे पिसते आ रहे हैं। यह स्थिति है कि न कोई रियासत का निवासी रियासत के अन्धेर पोलखानो को समाचार पत्रों मे प्रकाशित कराने का साहस करता है और न कोई बाहर का समाचार पत्र ही छापने को तैयार होता हैं। सौभाग्य से इसी समय राजस्थान की सशस्त्र क्रान्ति के दौर मे सन् 1914 ई० मे भूपसिह नाम से फरार हुए विजयसिंह पथिक ने सन् 1917 ई० (वि० स० 1974) मे राजस्थान की जन जागृति का श्री गणेश किया। अजमेर के चादकरण शारदा जैसे निर्भीक व त्याग शील वकील और 'प्रताप' के सम्पादक श्री गणेशशकर विद्यार्थी (ग्वालियर) उनके दाहिने हाथ बने। पथिक ने मेवाड के जागीरी ठिकाना विजोलिया से ही अपना साहसी कदम किसानो के सगठन हेतु उठाया और सन् 1919 ई० से किसान पचायत ने सत्याग्रह जारी कर दिया जो 5 वर्ष तक जारी रहा तथा उदयपुर राज्य के सत्याग्रही किसानो के आगे झुकना पडा। इस सत्याग्रह की जीत ने आस पास के राज्यों के किसानो पर काफी असर डाला। यह आग विजली की तरह राजस्थान भर मे फैल गई। इस प्रकार महात्मा गाधी के सत्याग्रह का भारत मे सबसे पहला प्रयोग करने का श्रेय पथिकजी के प्रधानत्व मे विजोलिया (मेवाड) के वीर किसानो को ही है। इसके बाद ही महात्मा गाधी ने चम्पारन (विहार) मे सत्याग्रह का चमत्कार दिखाया था।

किसान शब्द का सामान्यत अर्थ हमारे देश मे खेती बाडी करने वाले गँवार ग्रामीण से लगाया जाता है। परन्तु यूरोप और अमेरिका मे बडे बडे विद्वान एव योग्य व्यक्ति अपने को किसान कहते हुए गर्व का अनुभव करते है। वास्तव मे किसान जितना समाज का उपकार करता है उतना अन्य किसी व्यवसाय या जाति से नही हो सकता है। यह सब कुछ किसान के अथक श्रम का ही प्रतिफल है। तभी तो विश्व कवि रविन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है—"चल उठ! यह क्या गोमुखी मे हाथ डाल जप रहा है? यदि ईश्वर का दर्शन करना है तो वहा चल जहा किसान लोग जेठ की दुपहरी मे हल चला रहे है और चोटी का पसीना एडी तक बहा रहे हैं।"

महात्मा गाधी ने सन् 1929 की 5 सितम्बर को अपने "नवजीवन" पत्र में लिखा था कि—"सब इतिहासकारो ने गवाही दी है कि जो सभ्यता

भारत के किसानो मे पाई जाती है, दुनिया के और किसानो में नही पाई जाती है।"

किसानो के प्रति अपनी उदासीन नीति रखते हुए भी देशी राजा महाराजा और नव्वाब इनके गुण गाये बिना नही रहते है। ग्वालियर के महाराजा माधवराव सिन्धिया ने वि० स० 1976 की माघ सुदी 10 शुक्रवार (30 जनवरी 1920 ई०) का अपने भाषण में किसानो के प्रति यह महिमा सूचक शब्द कहे थे – आप किसान-जमीदार लोगो के साथ मुझे कोई परहेज नही है। इसलिये जैसे मैं आपको अपना समझता हू वैसे ही आपको मुझे अपना समझना चाहिये। मैंने तो आप सज्जनों को "अन्नदाता" का लकब दिया है। मेरे रिज्क का दारोमदार माती मेरे जीवन का हुक्म आपके ऊपर है और इसलिए लकब "अन्नदाता' इस्तेमाल करना मुझे बिल्कुल दुरुस्त मालूम होता है। आम मेरे अन्नदाता और मैं तुम्हारा तावेदार। कमाऊ पूत तुम्ही हो। जव तुम कमाई करके दोगे तभी इस बाजीगर का तमाशा चलेगा।"

ऐसे ही भाव बडोदा नरेश महाराजा सर सियाजीराव गायकवाड और मैसूर नरेश महाराजा सर कृष्णराज ओडेयर ने अपने भाषणो म कहे थे। वि० स० 1975 के आश्विन (ई० सन् 1918 अक्टूबर) मे मैसूर राज्य की अखिल भारतवर्षीय दशहरा कृषि कला कौशल प्रदर्शनी मे मैसूर नरेश के भाषण म ऐसे ही शब्द (कृषको के प्रति अन्नदाता) सुनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ जवकि मैं जोधपुर स्टेट की तरफ से डेलीगेट (प्रतिनिधि) होकर मैसूर गया था। वि० स० 1986 आश्विन वदि 3 शनिवार ई० सन् 1929 ता० 21 सितम्बर) को भोपाल नरेश नव्वाब हाजी मोहम्मद हमीदुल्ला खा ने अपने राज्य की प्रजा प्रतिनिधि सभा (असेम्बली) क पाचव अधिवेशन म किसानो के विषय म कहा था —

'मैं अपने सरदारा से तथा नगरो मे रहने वाली प्रजा और सभी राज-कर्मचारियो से एक व्यक्तिगत प्रार्थना करना चाहता हू। यह प्रार्थना यह है कि आप सब लोगो को मेरे किसानो से प्रेम करना सिखना चाहिये। वास्तव मे किसान ही देश के प्राण है। वे अपने रक्त को पसीना बना कर आपके लिये भोजन उत्पन्न करते है। अत आपको उन्हे अपने से किसी भी प्रकार तुच्छ न समझना चाहिये। इस विषय मे अपने आचरण के द्वारा मैने सदा आप लोगो के सामने एक आदर्श उपस्थित किया है। इसलिये

मुझे अधिकार है कि मैं आप लोगों से यह अनुरोध करू कि आप उनके प.स जाइये, उनसे मिलिए, उनके सुख और दुख में उनके साथी बनिये और शक्ति भर उनकी सहायता कीजिए। इस प्रकार की सेवा से आपको कोई हानि नहीं हो सकती। उल्टे किसान आपसे इस सेवा के लिए प्रेम करगे। आप लोगो को प्रसिद्ध अग्रेजी कवि गोल्ड स्मिथ की यह उक्ति सदा याद रखनी चाहिये कि— "किसान की सम्पन्नता ही देश के गौरव का आधार है। एकबार यह आधार जहा नष्ट हुआ कि इसे पुनरुज्जीवित नही किया जा सकता है।"

गुजरात के महाकवि पडित दलपतराम डाह्याभाई सी आई ई ने भी किसानो का गुणगान अपनी सरस कविता मे इस प्रकार किया है और सर्व सुखो का दाता किसान को ही माना है—

सर्वथी प्रथम जेणें सृष्टि मां अनाज वाव्यां ।
जेना खेतर नु अन्न जुक्तियो हूँ जमूं छूं ॥
उपजावे शेलडी ने स्वादिष्ट साकर खाड ।
भोजन करनी हूँ सदैव सुखे भमू छूं ॥
करे छे कपास पैदा कापड बने छे जेना ।
सारो सजी सणगार रग भर रमूं छूं ॥
करे छे खेती नु काम कहे छे दलपतराम ।
एवा एक कृपक ने नित्य नित्य नमूं छूं ॥

यह तो हम सभी मानते है कि किसान हमारे देश का आधार है परन्तु फिर प्रश्न उठता है कि क्या राजस्थायी किसान अपने को ठीक उसी स्थिति मे पाता रहा है जो कि तत्कालीन विद्वानो एव नरेशो ने बखानी है तथा सुख एव ऐश्वर्य की प्राप्ति कर अपने को गौरवशाली अनुभव करता है? उत्तर इसके विपरीत है। सुख समृद्धि तो उसके लिये सुनहरे स्वप्न बने रहे हैं जिसका दायित्व शासकीय वर्ग से कही अधिक स्वय इनके समाज पर पडता है। किसान पैसा न होते हुए भी कर्ज लेकर धूर्तमुखियो के लल्लो चप्पो मे आकार मृतको को स्मृति मे जातीयभोज के औसर मौसर (नुकता) आदि करने में अपनी शान समझते आये है। इस विषय मे एक राजस्थानी देशभक्त कवि (प० अर्जुनलाल सेठी) की ये पक्तिया उपयुक्त उदाहरण है —

जेवर बेचे घर को बेचे नुक्ता करना होता है।
नहीं करे तो जाति भाई का ताना सहना होता है ॥
जाति वाले तो इक दिन जीमें घरवाला नित रोता है।
लड्डू बाज सब चैन उडावे वह सुख नींद न सोता है ॥

जब पास में पैसा नही रहता तो बोहरा छाती पर खडा रहता है। उस समय इनके खाने को अन्न भी नही रहता तब भी इनकी कुरीतियो से विमुखता नही होती और कर्ज देने वाले बोहरे (साहूकार) भी इन पर दया नही करते हैं। वे अपने खाता (लिखतों) में दूना ड्योढा ब्याज लगा कर ऋण बढाते आये हैं। कर्ज के निरन्तर बढने का मूल कारण सूद की बढती वृद्धि ही है। यदि किसी व्यक्ति को 100) रुपया उधार लेने है तो रुपये देने वाला बोहरा एक आने से तीन आने प्रति रुपया काटे के काट लेगा। मान लिजिये कि रुपये के पीछे दो आने काट के लगाये गये है तो 100) रु० लेनेवाले का 87)50 दिये जायगे और सरकारी स्टाम्प (खत) लिखाया जायगा 125) से लेकर 140) रु० तक का। यह भी शर्त लिखाई जावेगी कि कर्ज लेनेवाले को 1), 2), 4), 5), या 10) रु० सैंकडा के हिसाब से हर महिने के ब्याज के देन होगे और यदि 3 मास या छ मास तक बराबर सूद अदा नही हुआ तो सूद की दर दुगनी करदी जावेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि आज कल के बोहरे मानवीय भावों से बिल्कुल शून्य बन गये हैं।

जोधपुर नरेश हिजहाईनेस महाराजा सरदारसिंह ने अपनी पुस्तक "भाई पाली दूर" (मेरी पाली यात्रा) के पृष्ठ 14 पर बोहरो अर्थात् साहूकारो के प्रति इस प्रकार लिखा है—

हित मे चित मे, हाथ मे खत मे मत मे खोट।
दिल मे दरसावे दया, पाप लिया सिर पोट ॥

"अर्थात् बोहरे की मित्रता मे, मन मे व्यवहार मे खत (लिखावट) मे और उसके उद्देश्या मे धोखेबाजी भरी रहती है। वह दयावान होने का बहाना तो करता है लेकिन दरअसल वह होता है पापात्मा ही।" यदि वह एक बार किसी किसान को अपने जाल मे फास लेता है तो फिर उसे नही छोडता है। इसी से कहा गया है कि--

देणो भलो न बाप को साहेब राखे टेक।

अर्थात्-कर्ज अपने बाप का किया भी भला नही, ईश्वर इससे बचावे।

इस ससार मे कर्जदार की दशा कितनी सोचनीय और दया के योग्य है।

अधिकाश बोहरे लोग कर्ज देते और वापस लेते समय दोनो बार किसानो को लूटते है। उनको चालाकी का चित्र किसी चारण कवि ने यो खिचा है—

तोल साटै ताकडी, लकडी ढेक लगावे।
अडवा करै उधार, विणज ववार ज्यु ँ बसावे॥
देता तो घटतो देवैं, नेता बधतो पाव री।
वाणिया शिकार इण विध रमै, बस्ती माँय बावरी॥

अर्थात् "तकडी (तराजू) से तोलते समय बोहरे लोग अपनी कलाई से रेढ मार कर ग्राहको को धोखा देता है। उनका कर्जा एक धोखे की टट्टी है। उनके व्यवहारो मे सब जगह फन्दा है। इस प्रकार साहूकार क्या है, मानो बोहरे के वेश मे सचमुच निर्दयी पुरुष है।" यह लोग मु ह मे राम बगल मे छुरी रखते हुए, आवश्यकता से दबे लोगो से लाभ उठा लेने मे नही चूकते। इसोलिये इनकी विषय मे यह भी कहावत प्रसिद्ध हैं—

वाण्या थारी बाण, कोई नर जाणें नही।
पाणी पीवै छाण, लोही अणछाण्यो पिवै॥

अर्थात्—ऐ साहूकार! तेरी धूर्तता का भेद कोई नही जान सकता। तू पानी तो कपडे से छाण कर पीता है लेकिन किसान के खून को पी जाता है।

साधु सयासियो के प्रत्येक वाक्य पर अथवा इनकी प्रत्येक हलचल पर "आदेश बावाजी" "हुक्म महाजन" कहने वाले लेकिन किसानो के रोते बच्चो के मु ह मे से रुखी-सूखी रोटी का टुकडा तक छीन लेनेवाले इन निर्दयी बोहरो की मनोवृत्ति की यह कैसी दुखद टोका है! ये अधिकाश बोहरे कर्ज देते और वापस लेते समय दोनो बार किसानो को लूटते हैं। अपने

विषय मे ऐसी लोक निन्दा की बाते सुनकर जहा इन साहूकारो को शर्म आनी चाहिये और एकक्षण के लिये अपनी लोभवृत्ति के आग लगाकर, जहा उनको यह सोचना चाहिये कि उनके कुकर्मो को सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान ईश्वर देख रहा है, जहा वे सब बातें भूलकर उल्टे अपनी शेखी बघारते है और ऐसी ऐसी गुस्ताखी भरी बातें कहते है--

ओछी-ओछी डाडी राखा, लाबी लाबी करिणया ।
सेर रो तीन पाव तोला तो वणियाणी जणिया ।।

अर्थात् "हम तकडी की डाडी तो छोटी छोटी रखते है पर डारा लम्बी रखते हैं । हमारा नाम असली बोहरे तभी है जब हम सेर भर के बदले तीन पाव ही तोल कर देव ।"

किसान लोग ऐसे बोहरो को यमदूत समझते है । एक कहावत प्रसिद्ध है कि "बौरा को राम-राम जम को सन्देशो है ।" अर्थात् जब कभी कोई बोहरा किसी किसान को रामराम (जैरामजी की) कहता है तो बेचारे किसान के दिल की धडकन तेज हो जाती है और समझता है कि यमराज ने मौत का बुलावा भेजा है ।" यही नही बोहरो से वे जहरीले साप से भी अधिक डरते है--

साप रो काट्योडो बचै ।
पण वाण्या रो काट्योडो नहिं बचै ।।

——

धर्म

सन् 1931 की जनगणना के अनुसार राजस्थान मे 90 प्रतिशत हिन्दू, 9 प्रतिशत मुसलमान, 0 05 प्रतिशत ईसाई व नाममात्र के पारसी तथा यहुदी धर्मावलम्बी है। हिन्दुओ मे जैन धर्मावलम्बी 2 06 प्रतिशत, वनवासी 2 02 प्रतिशत और अछूत 15 प्रतिशत है।

धर्मानुसार विभिन्न धर्मावलम्बियो का ब्यौरा इस प्रकार है—*

हिन्दू	1.01,50,251
(क) सनातनी (पौराणिक)	95,67,234
(ख) जैनी	3,00,748
(ग) सिक्ख	41,605
(घ) आर्य समाजी	11,471
(ङ) ब्रह्म समाजी	44
(च) देव समाजी	56
(छ) बौद्ध	1
(ज) वनवासी	2,28,660
(झ) अन्य	432

* सन् 1971 की जनगणना के अनुसार राजस्थान मे विभिन्न धर्मावलम्बियो की सख्या इस प्रकार है—

(क) हिन्दू	2,30,93,805
(ख) जैनी	5 13,548
(ग) सिक्ख	3,41,182
(घ) बौद्ध	3 642
(ङ) मुसलमान	17,78,275
(च) ईसाई	30,202
(छ) विविध	4,336
(ज) अज्ञात धर्मी	723

इस प्रकार हिन्दू 89 93 प्रतिशत, मुसलमान 6·90 प्रतिशत, सिक्ख 1·33 प्रतिशत, जैन 1 99 प्रतिशत, ईसाई 0·12 प्रतिशत है और बौद्ध 01 प्रतिशत है बौद्धो की सख्या बढ़ने का मुख्य कारण कई हिन्दू अछूत जातियो का बौद्ध धर्म अपना लेना है।

मुसलमान	10,69,325
(क) सुन्नी	10,41,361
(ख) शिया	21,818
(ग) अहलेहदीश (वहाबी)	2,004
(घ) अन्य	4,142
ईसाई	5,778
(क) भारतीय	4,021
(ख) विदेशी	1,757

ईसाईयो मे भी विभिन्न मतो के अनुसार सख्या इस प्रकार है—

(क) एन्गलीकन	941
(ख) इण्डियन युनाईटेड चर्च	1,514
(ग) मैथोडिस्ट	893
(घ) प्रोटेस्टेन्ट	334
(ड) रोमन कैथोलिक	1,465
(च) अन्य	631
पारसी	319
यहूदी	38

जैनियो मे उनके विभिन्न मतो के अनुसार सख्या इस प्रकार है—

कुल जैन—	3,00,748
(क) श्वेताम्बरी	1,34,615
(ख) दिगम्बरी	67,237
(ग) बाईस टोला (ढु ढिया)	50,228
(घ) तेरह पथी	38 563
(ड) अन्य	1,165

हिन्दू धर्म किसी एक व्यक्ति द्वारा चलाया धर्म नही है। और न इसका कोई एक धार्मिक ग्रन्थ ही है। यह अनेक विश्वासो का समदाय है। आर्यों के समय से लेकर अब तक अनेक धर्मों व सस्कृतियो के मेल से ही यह धर्म बना है। वास्तव मे हिन्दू एक जाति है जिसका नामकरण लगभग 3500 वर्ष पूर्व ईरानी लोगो द्वारा किया गया। ईरानी सिन्धु नदी को

हिन्दु नदी कहते थे अत सिन्धु नदी के क्षेत्र मे रहने वाले लोग हिन्दू कहलाने लगे। इसी से हिन्दु व उनका देश हिन्दुस्तान शब्द चल निकले। यो अब सामान्यत हिन्दु धर्मावलम्बियो मे पौराणिक (पुराणो मे वर्णित धर्म) मत को मानने वाले लोग आते हैं। पौराणिक मत मे किसी एक ही देवता की पूजा नही की जाती है। पुराणो मे अनेक देवी देवताओ का महात्मय बतलाया गया है। इसी कारण हिन्दु लोग ब्रह्मा विष्णु, शिव, गणेश आदि देवताओ के साथ ही साथ राम, कृष्ण, बुद्ध आदि की भी पूजा करते है। इनके अलावा कई वृक्षो (तुलसी, वट पीपल आदि) व नदियो (गगा, यमुना, नर्मदा आदि) का भी पूजते हैं।

आर्यों ने वेदो की रचना लगभग 3000 वर्ष ईसा पूर्व काल मे की थी। वैदिक आर्य यज्ञ के प्रेमी थे। वे वरुण सविता, ऊषा इन्द्र, सूर्य अग्नि आदि को भी देवता मानते थे। वेद चार है— ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। अथर्ववेद मे अधिकाश भाग पहले तीन वेदो के हैं। यज्ञो मे प्रत्येक वेद के मत्र पढे जाते थे। इन यज्ञो की विधिया बतलाने को ब्राह्मण ग्रन्थ रचे गये। प्रत्येक वेद के अलग अलग ब्राह्मण ग्रथ है। वेदो के शुद्ध पठन और गायन के लिये वेदान्तो की रचना की गई। वेदान्तो के साथ ही उपनिषदो की भी रचना हुई। उपनिषदो मे वेद के उन स्थलो की व्याख्या है जिनमे यज्ञो से अलग हटकर ऋषियो ने जीवन के गहन तत्वो पर विचार किया था। उपनिषदो से समाज मे आत्मविद्या और तपश्चर्या की प्रवृत्ति जागृत हुई। उपनिषद काल (ईसा पूर्व 600) मे लोगो का ध्यान यज्ञो की ओर से हटने लगा और वे उपासना की ओर ध्यान देने लगे। मूर्तिपूजा का प्रचलन हो गया। वैरागियो और सन्यासियो की मख्या बढने लगी। ये लोग हठयोग मे विश्वास करते थे। हठयोग की क्रिया से वे आत्मा की उपलब्धि प्राप्त करना मानते थे। इस काल मे वेदो के दो प्रबल विरोधी—बृहस्पति और चार्वाक हुए। इन्होने वेदो की निन्दा करते हुए यहा तक कहा—'वेद ठगो, पाखण्डियो, और मासाहारियो की रचना है। वेदो के रचियता यज्ञो हेतु घोडो को मारते थे और उनका मास खाते थे।" इनकी यह निन्दा पूर्णतया सत्य नही थी। क्योकि, उस काल के ब्राह्मण ग्रन्थो मे स्पष्ट आदेश लिखे मिलते हैं कि, "माहिस्यान् सर्व भूतानि" (किसी भी जीव को मत मारो)। श्री कृष्ण ने भी बताया था कि, जिस यज्ञ मे जीव हत्या नहीं होती है वही सर्वोत्तम यज्ञ होता है। वास्तव मे आर्यों के यज्ञ हिंसा रहित होते थे। वैदिक काल मे यज्ञ शब्द का अर्थ श्रेष्ठ कर्म था।

जिसका अर्थ सगति - करण देव पूजा और दान था। स्मृतियों मे पाच प्रकार के यज्ञ माने गये अर्थात् ब्रह्म यज्ञ, (सध्या), देव यज्ञ (हवन), पितृ यज्ञ (माता पिता की सेवा), भूत यज्ञ या वलि विश्वदेव अर्थात् छोटे पशुओ का पालन जैसे कुत्ता, पतित, निस्सहाय, मेहतर (चण्डाल, कोढी, कौआ, चीन्टी, इत्यादि को खिलाना और पाचवा अतिथि यज्ञ अर्थात् अतिथि की शुद्ध अन्न जल से सेवा और तृप्ति करना, अकस्मात घर पर आये हुए पण्डितो (विद्वानो) और सन्यासियों की सेवा करना। इसमे कोई सन्देह नही कि इस काल मे कुछ ब्राह्मण हिंसा पूरित यज्ञ को ही धार्मिक कृत्य समझने लगे थे और सामान्य जनता को यज्ञो मे होने वाली इस अनावश्यक पशु वलि को रोकना उचित समझा। ऐसी परिस्थितियो मे कुछ क्षत्रियों ने विशेष कर क्षत्रिय वशज महावीर व बुद्ध ने निरीह पशुओ की प्राण रक्षा का भार उठाया उन्होने यज्ञ के पुरोहितो (ब्राह्मणो) की प्रमुखता समाप्त करने व समाज मे समता लाने के प्रयत्न किये। इन्होने वैदिक यज्ञो मे होने वाली हिंसा का भी विरोध किया।

महावीर जैन धर्म के प्रवर्त्तक थे। जैन धर्म की मुख्य बाते है—अहिंसा और तप। स्वयम् हिंसा करना, दूसरो से हिंसा करवाना, व अन्य किसी किसी प्रकार से हिंसा मे योग देना, जैन धर्म मे इन सबकी मनाही है। शारीरिक अहिंसा के अलावा बौद्धिक अहिसा भी जैन धर्म में अनिवार्य है। इसी कारण जैन काश्त न कर व्यापार का धन्धा अपनाते रहे हैं ताकि उनसे कोई हिंसा नही हो। जैन धर्म मे अपरिमित कष्ट सहने की भी प्रवृत्ति है। जैन महात्मा इन्द्रीय सुख के घोर शत्रु है। उपवास और अनशन की जैन धर्म मे वडी महिमा है।

बुद्ध ने बौद्ध धर्म चलाया। बौद्ध मत भी पशु हिंसा का विरोधी रहा। यो बौद्ध धर्म मुख्यत सन्यासियों का धर्म था। जैन धर्म की भाति बौद्ध धर्म वेदो का विश्वास नही करता है। ईसा पूर्व काल मे इन दोनो धर्मो का तेजी से भारत भर मे प्रचार हो गया और राजस्थान मे कई मठ व विहार बन गये जहा जैन व बौद्ध साधु रहते थे। लेकिन, बौद्ध धर्म की यहा जडे जम नही सकी। यह यहाँ लोकप्रिय नही हो सका क्योकि, बौद्ध दर्शन मे चिन्तन पर ज्यादा जोर दिया गया था जो सामान्य बुद्धि की जनता की समझ के वाहर था। वाद के वर्षो मे बौद्ध साधु ज्यादा ही सुरा और

दगी में लिप्त हो गये । अत जनता उन्हे घृणा से देखने लगी । इन रणो से अब राजस्थान मे बौद्ध धर्मावलम्वी नाम के ही है। इसके रित जैन धर्म वैदिक धर्म से ज्यादा ही साम्य रखने के कारण यहा जम । राजस्थान में अब जैनो की सख्या तीन लाख से ऊपर है। काफी हिन्दू धर्म में भी आ गये क्योकि उनके आचार विचार, रहन सहन र रीति रिवाज हिन्दुओ जैसे ही थे ।

जैन धर्म की शाखायें मुख्यत चार है—श्वेताम्बरी, दिगम्बरी, ईस टोला (ढु ढिया), और तेरह पथी । श्वेताम्बरी मूर्ति पूजते हैं और नकी मूर्तियों के पोशाक व गहने होते हैं। दिगम्बरी की मूर्तिया तथा नके साधु नगे ही रहते हैं। ये जैन साधु शहरो में भी नगे डोलते रहते है। गम्बर यह मानते है कि, स्त्रियो की मुक्ति नही होती है परन्तु श्वेताम्बरी ह मानते हैं कि स्त्रियो की मुक्ति होती है। दिगम्बरी कहते हैं कि जैन र्थकर मल्लिनाथ पुरुष था परन्तु श्वेताम्बरी जैनी कहते हैं कि ल्लिनाथ एक स्त्री थी ।

ढू ढिया (स्थानक वासी) सम्प्रदाय के जैनी गुरुओ की पूजा करते है। नके गुरु सफेद वस्त्र पहिनते हैं और मुह पर मुमती पट्टी बाधे रहते है। ढियाँ मत वाले मूर्ति पूजा नही करते है। तेरह पन्थी मत श्वेताम्बर म्प्रदाय की एक शाखा है। यह ढु ढिया (बाईस टोला) मत से स० 1817 साढ सुदी 15 शनिवार (ता० २८ जून, 1760 ई०) को फटा है। इसके लाने वाले स्वामी भीकमजी ओसवाल थे जो स० 1783 आसाढ सुदि 13 ो जोधपुर राज्य के गाव कँटालिया (परगना सोजत) मे जन्मे थे। अपनी र्मपत्नी का स्वर्गवास हो जाने पर सम्वत् 1808 वि० में वे ढू ढिया मत के ाधु हो गये। गुरुदेव के मतभेद होने पर इन्होने अपने नये सिद्धान्तो के नुसार नया पथ चलाया उस समय केवल 13 साधु उनके विचार के मले । अत यह मत 'तेरहपन्थी" कहलाया । इनके 13 नियम है जिनमें ुख्य हैं— मूर्ति को नही पूजना, सिर्फ अपने पथ के साधुओ का आदर रना, किसी प्राणी को दु ख न देना और कोई सम्पत्ति अपने पास न खना। इस मत के कुछ मतव्य निराले है। जीव दया के बारे मे गिरते ये बच्चो को नही बचाना, कबूतर को कोई बिल्ली खा रही हो तो नही ुड़ाना क्योकि, कबूतर बिल्ली की खुराक है। अग्नि लगजाने से कोई गौ भा जलती हो तो उसे भी नही बचाना, भूखे प्यासे प्राणियो की सहायता नही करना इत्यादि क्योकि इनसे एकान्त पाप लगना मानते है।

यो देखा जावे तो जैन धर्म व बौद्ध धर्म काफी सीमा तक वैदिक धर्म के समान ही थे। दोनो का मूल उपनिषदो के चिन्तन मे ही था। यह धर्म तो केवल वैदिक धर्म को सशोधन करने को ही चलाये गये थे। राम कृष्ण की भाति महावीर व बुद्ध भी अवतार थे जिन्होंने पिछले धर्म में सुधार किये। अन्यथा सनातन धर्म तो बराबर चलता ही आ रहा था। वह कभी भी पूर्णतया समाप्त नही हुआ। कुछ समय के लिये वह भले ही दब गया हो। गुप्त काल तक (चौथी शताब्दी) आते-आते हिन्दू धर्म का पुन विकास हो गया। और हिन्दू यज्ञ वेदी को छोडकर मूर्तिपूजा करने लगे। अब साकार की उपासना होने लगी। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, दुर्गा और दशावतारो की सर्वत्र पूजा होने लगी। वैष्णव, शैव और शाक्त उपासना की विधिया प्रचलित हो गयी। प्रारम्भ म शैव और शाक्त धर्म में कोई विभिन्नता नही थी। केवल कालक्रम से ही अलग-अलग हो गये। शैव धर्म का मुख्य ध्येय मुक्ति रहा है और उसकी साधना ज्ञानमयी भक्ति से होती है। शाक्त धर्म ने अपना ध्येय मुक्ति नही बल्कि सिद्धी को माना है और उसके साधनो में मुख्यत मत्र, तत्र और योग[1] की साधना शैव धर्म के साथ ही विकसित हुई और उसका लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करना ही रहा। लेकिन शाक्त धर्म ने योग को सिद्धियो का प्रमुख साधन के रूप मे अपना लिया। योग की क्रियाओ मे हठयोग प्रमुख है। इसको शैव व शाक्त दोनो ही प्रमुखता देते हैं लेकिन किसी सीमा तक शाक्तो में शैवो से ज्यादा इसका प्रचलन है।

हिन्दू धर्म का यही रूप बराबर चलता आ रहा है। पिछली शताब्दियो मे कई धर्माचार्य आये लेकिन वे हिन्दू धर्म की धूल झाडकर ही रह गये। हिन्दू धर्म के मूल रूप को कोई नही बदल सका। हिन्दू धर्म के प्रमुख सुधारको मे शकराचार्य का नाम अमर है। ईस्वी सन् 788 मे जन्मे शकराचार्य ने पौराणिक धर्म से ग्रसित हिन्दू धर्म को उपनिषदो की ओर मोडा। इससे हिन्दुओ का ब्रह्म को प्राप्त करने का मार्ग स्पष्ट दिखाई देने लगा। उन्होने एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया। शाक्त मन्दिरो मे बलि देने की प्रथा का विरोध किया और बौद्ध सघो के अनुसार ही हिन्दू सन्यासियो के मठ स्थापित किये। भारत एक ही राष्ट्र है, यह जतलाने

---

1 योग द्वारा साधक शरीर को आत्मा से जोड लेता है और आत्मा को परमात्मा से एकाकार कर मुक्ति पा लेता है। योग की क्रिया मनोविज्ञान की क्रिया क समान होती है।

को उन्होने भारत की चारो दिशाओं मे चार पीठ स्थापित किये। ये पीठ हैं— उत्तर मे बद्रीकाश्रम, पश्चिम मे द्वारका, पूर्व मे जगन्नाथपुरी और दक्षिण मे शृंगेरी। इनके समय मे बौद्ध धर्म मृत प्राय हो गया। शंकर बौद्ध दार्शनिको की भांति शून्यवाद मे ही विश्वास करते थे। उन्होने इसे मायावाद कहा। इसी कारण शंकर को प्रच्छन्न बौद्ध कहा जाता है। शंकर का ब्रह्म निराकार था। इस कारण जनता इसकी ओर ज्यादा नही झुक पाई। और शंकर मत के विरुद्ध निम्बार्क, रामानुज, वल्लभाचार्य आदि साकार वाद के महात्मा ज्यादा लोकप्रिय हो गये। हिन्दू धर्म के अन्य सुधारको मे कबीर, दादु आदि आते हैं। इन सुधारको द्वारा चलाये पन्थो के कबीर पंथी,[1] दादू पंथी,[2] रामस्नेही,[3] (शाहपुरा व खेडापा) विश्नोई,[4]

(1) कबीर पंथी –

इस पंथ को रामानंद के शिष्य कबीर ने चलाया था। कबीर निराकार ईश्वर का उपासक था। उसके नीति विषयक दोहे हिन्दी साहित्य की अमूल्य देन है। कबीर वाणी के नाम से इस पंथ के लाग अपने धर्म का मूल ग्रन्थ मानते हैं। कबीर पंथी साधु विवाह नहीं करते हैं और वे किसी भी जाति के व्यक्ति को अपना चेला बना लेते हैं।

(2) दादू पंथी –

इस सम्प्रदाय के संस्थापक दादू अहमदाबाद के नागर ब्राह्मण थे। इनके उपदेश जो लगभग 5000 छन्दों मे दादु वाणी मे संग्रहित है। दादु के एक सौ बावन शिष्य थे। जिन्होंने देश के विभिन्न भागों में गादिया स्थापित की। दादू पंथ के लोग भगवा वस्त्र पहनते हैं। इस पंथ मे नागा और निहंग–दो शाखाये हैं। इनकी मुख्य गद्दी नरायना मे हैं।

(3) रामस्नेही –

रामस्नेही साधुओं के गुरुद्वारे शाहपुरा और खेडापा मे हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायी सदा राम-नाम का उच्चारण करते रहते हैं। इनका एक गुरुद्वारा बीकानेर राज्य के सिंयल गाव मे हें।

(4) बिश्नोई –

इस पंथ के प्रवर्तक जाम्भाजी को विष्णु का अवतार बताया जाता है। जाम्भाजी पवार राजपूत था। जाम्भाजी के 29 उपदेशों और 120 शब्दों का संग्रह "शब्द सागर" मे संग्रहित है जो इनका मुख्य धार्मिक ग्रन्थ है। इस धर्म मे पहले प्रत्येक जाति का व्यक्ति शामिल हो सकता था लेकिन अब ये एक जाति विशेष बन गई है। पहले इस धर्म मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और जाट ही थे जो जाम्भेश्वरजी के 29 उपदेशों को ही मानते थे।

सिक्ख,[1] ब्रह्म समाजी,[2] आर्य समाजी,[3] देव समाजी,[4] राधा स्वामी,[5] आदि मतो के अनुयायी भी यहा पाये जाते हैं।

1) सिक्ख –

इस मत के संस्थापक नानकदेव का जन्म स० 1526 कार्तिक सुदि 15 ता० 20 अक्टूबर 1469 ई० शुक्रवार) को पंजाब मे हुवा था। ये जाति के क्षत्री थे और उनके पिता का नाम कालुराम था। उन्होंने बताया कि मूर्तिपूजा व्यर्थ है। ईश्वर अवतार नहीं लेता। जात पात व छुआ छूत मानना भी व्यर्थ है, इत्यादि। इनके बाद अंगददेव, अमरदास रामदास और अर्जुनदेव ने गुरु का स्थान ग्रहण किया। अर्जुनदेव मुसलमानो द्वारा वि० स० 1663 मे मारे गये। उसके बाद हरगोविन्द गुरु ने सिक्खो को तलवार पकडना सिखलाया। नवें गुरु तेग बहादुर को बादशाह औरंगजेब ने मरवा डाला। गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्ख लोगों को हथियार बाधना और नाम के साथ वीरता सूचक "सिंह" शब्द जोडना धर्म बतलाया और उन्हें सैनिक बना दिया। गुरु के दो पुत्रों को औरंगजेब ने दीवार मे चुनवा दिया। इतना होने पर भी सिक्खों ने मुसलमानो के छक्के छुडा दिये। पाच ककार वस्तुए प्रत्येक सिक्ख रखता है—कडा, केश, कृपाण, कघा और कच्छ (जांघिया)। तमाखू छूना ये पाप समझते हैं।

(2) ब्रह्म समाजी –

ब्रह्म समाज की स्थापना स० 1885 कार्तिक सुदि 2 रविवार (ई० सन् 1828) मे राजा राममोहनराय ने कलकत्ते मे की। वह जात के ब्राह्मण थे। स्त्रियो को जलाया जाना (सती प्रथा), वेदों की विस्मृति आदि बातें उन्हें अच्छी न लगी और उन्होने इनके विरुद्ध आन्दोलन शुरु किया। इस समाज के सिद्धान्तानुसार परमात्मा एक है तथा जीव उससे भिन्न है। मूर्तिपूजा और जाति भेद मिथ्या है। इस समाज का बगाल मे बडा प्रचार है। बम्बई प्रदेश मे इसका रूपान्तर प्रार्थना समाज है।

(3) आर्य समाजी –

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बम्बई मे स० 1932 की चैत्र सुदि 5 शनिवार (10 अप्रेल 1875 ई०) को आर्य समाज स्थापित कर वैदिक धर्म का असली स्वरूप हिन्दुओ को समझाया और हिन्दू धर्म को ईसाई तथा मुसलमानो कटाक्षों से बचाया। उन्होंने ईसाई और मुस्लिम धर्म का खोखलापन सिद्ध करने मे कोई कसर नहीं रक्खी। इससे कई ईसाई व मुसलमान उसके घोर शत्रु बन गये। इसके अलावा उन्होंने हिन्दू धर्म की भी बुराईयों को दूर किया और हिन्दुओ के सामाजिक सगठन को दृढ किया। उन्होंने बतलाया कि हिन्दुओं के धर्मग्रन्थ वेद ही है। अन्य शास्त्रों और पुराणों को आख बन्द कर नहीं मानना चाहिये। उन्हें बुद्धि की कसोटी पर कस

राजस्थान मे मुस्लिम धर्मावलम्बियो की संख्या लगभग ग्यारह लाख है। राजस्थान मे इस धर्म का प्रचार ग्यारवी शताब्दी मे हो गया था लेकिन पृथ्वीराज चौहान की पराजय (ईस्वी सन 1192) के बाद से यहा इसकी जड़े जमने लगी। मुस्लिम धर्मावलम्बियो का इस क्षेत्र मे आने का प्रारम्भ मे मुख्य कारण राजनैतिक था। उस समय यहा के शासक व जनता छोटे 2 राज्य मे बटी हुई थी और वे अपने राज्य को ही अपना देश मानते थे। इस कारण मामूली झगडो पर वे एक दूसरे राज्य से लडते रहते थे और अपनी शक्ति खोते रहते थे। यह देख कर ही मुसलमान आक्रमणकारी इस ओर तेजी से बढ़े और यहा के राजाओ को पराजित कर अपना शासन

कर ही समझना चाहिये। वह मूर्ति पूजा, अवतार वाद तीर्थों आदि को भी नहीं मानते थे। उन्होने सिद्ध कर दिया कि पौराणिक धर्म मे कोई सार नहीं है। इससे कई सनातनी हिन्दू उनके शत्रु हो गये और उन्हें विष देकर मार डाला।

(4) देव समाजी –

यह समाज वि० स० 1934 (ई० सन् 1877) में कानपुर निवासी प० शिवनारायण अग्निहोत्री ने लाहोर मे स्थापित किया था। बाद मे सन्यासी (स्वामी सत्यानन्द) बनकर अग्निहोत्री ने देवगुरु भगवान की उपाधि धारण की। ईश्वर को यह समाज नहीं मानता है। समानता के आदर्श पर यह चलाया जाता है। मद्यपान व मांसाहार की मनाही है। इसके अनुयायी बहुत ही कम है।

(5) राधास्वामी –

यह सबसे नवीन पथ है। इसके जन्मदाता आगरा के बाबू शिवदयाल सेठ (खत्री) थे जो अपने सम्प्रदाय मे "स्वामीजी महाराज" कहलाते थे और सर्व शक्तिमान राधास्वामी के अवतार समझे जाते थे। उनके द्वारा वि० स० 1917 माघ सुदि 5 शुक्रवार (ता० 15 फरवरी 1861 ई०) को इस पथ का शुरू होना कहा जाता है। उनका जन्म 1875 भादो वदि 8 सोमवार (ता० 25 अगस्त 1818) को और देहान्त स० 1935 के आसाढ वदि 1 शनिवार (ता० 15 जून 1878 ई०) को हुआ। उनकी धर्मपत्नि "राधाजी महाराज' के नाम से प्रसिद्ध है। इस धम की विशेषता योगाभ्यास में है जो गुरु से सीखा जाता है। आगरा मे सन् 1915 ई० से दयालबाग मे इनका प्रधान मठ है। इस पथ मे गगा, जमुना, मन्दिर मूर्ति और जात-पांत नहीं मानी जाती है। ये लोग अपने को "सत्सगी" कहते हैं। इस मत मे गुरु भक्ति बहुत है और गुरुजी का बचा हुआ महाप्रसाद खाने मे आत्मिक सम्बन्ध से मुक्ति मानते हैं। (देखे डाक्टर डी० आर० भडारकर लिखित "नोट ग्रान दी राधास्वामी सेक्ट" सेन्सस आफ इण्डिया जिल्द 9 सन् 1901 ई० पृ० 74)।

जमा बैठे। मुसलमान शासकों ने अपना धर्म फैलाने मे भी कोई कसर नहीं रखी। इस्लाम धर्मावलम्बियों में सहन शीलता कतई नही थी। हिन्दू दूसरे धर्मो का आदर करते आये है लेकिन मुसलमान हिन्दुओं के कट्टर विरोधी थे और वे हिन्दू मूर्ति पूजन को पूर्णतया समाप्त करने पर तुले हुए थे। अत उन्होने यहा मारकाट कर लोगो का धर्म परिवर्तन कर, हिन्दुओं की जो दुर्गति की उससे हिन्दू और मुसलमानो के बीच जो गहरी खाई खुदी वह आज तक पट नही पाई है। उन्होने हिन्दू अछूतो को लोभ लालच देकर, स्वर्णो के अत्याचारो से छुटकारा दिलाने का आश्वासन देकर, काफी लोगो को अपने धर्म—इस्लाम मे परिवर्तित किया। इस प्रकार राजस्थान मे मुसलमानो की ज्यादा सख्या हिन्दू धर्म से परिवर्तित लोगो की है। ये धर्म परिवर्तित मुसलमान अपने रहन सहन रीति रिवाज, आदि कम ही छोड पाये है। इस कारण अभी भी हिन्दुओ के कई रीति रिवाजो का ही पालन करते है। हिन्दुओं द्वारा मूर्तियो की पूजा की जाती है तो यह मुसलमान भी कब्रो की पूजा करते है, मिन्नते मागते है, और चढ़ावा चढाते है। दहेज, श्राद्ध आदि का भी इनमें प्रचलन हो गया है। जाति प्रथा भी इनमे फैल गयी है। मुसलमानी मजहब मे ७२ सम्प्रदाय (फिरके) है जिनमे सुन्नी, शिया, वहाबी (अहले हदीस) मुख्य है। इनके सिवाय नौ मुस्लिमो को भी कुछ जातिया है जो अब तक हिन्दू धर्म का कई बात मानती है। हिन्दू व मुसलमान या आपस म मेल से ही रहते थे, लेकिन पिछली शताब्दी से जब अग्रेज शासको ने फूट डाली और शासन भेद डालकर करो की नीति अपनाई है तब से ब्रिटीश भारत के देखादेखी देशी राज्यो के मुसलमान भी कही कही मस्जिद के सामन बाजा न बजाने का सवाल उठाने लग है और हिन्दू मुस्लिम झगडे होन लग गये हैं।

उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ म अग्रजो से यहा के राजाओं की सधिया हो जाने पर काफी अग्रेज यहा रहने लगे। उनके कारण यहा भी उनके धर्म—ईसाई धर्म का प्रचार होन लगा। राजस्थान मे पहला ईसाई मिशन ब्यावर मे मार्च 1860 मे स्थापित हुआ और अगस्त, 1861 मे ईसाई धर्म का सार्वजनिक रूप से प्रचार प्रारम्भ हो गया। ब्यावर के बाजार मे सप्ताह मे दो बार अग्रेज पादरी धार्मिक सभाय करने लगे। इन सभाओ म हिन्दू ब्राह्मण, मुसलमान मुल्ला आदि भाग लेने लगे। इनके प्रयत्नो से 22 मार्च, 1863 को पहला व्यक्ति झाक गाव का मेर (रावत) उमरावसिंह ईसाई धर्म मे परिवर्तित हुआ। अंग्रेजी सरकार द्वारा काफी

प्रोत्साहन धर्म परिवर्तन हेतु दिया जाने लगा। फिर भी यहा ईसाई धर्म ज्यादा नही फैल सका। इसका मुख्य कारण उनका पश्चिमी सस्कृति मे ज्यादा रगा होना था। जो भी ईसाई धर्म मे परिवर्तित हो जाता वह शराब पीना, गाय और सुअर का मास खाने से परहेज नही करता था तथा टोप पहन कर या टाई लगाकर अपने को काला अग्रेज समझता था। मानो वह या उसके पूर्वज इगलैंड से ही आये हो। ऐसे लोग ज्यादातर वनवासी या अछूत जातियो के थे। यो यहा के लोगो मे धार्मिक सस्कार इतने सुदृढ थे कि ईसाई धर्म की बाहरी चमक उन्हें प्रभावित नही कर सकी। अत ईसाई धर्म यहा लोकप्रिय नही हो सका। अच्छे खानदानो के तो नाम मात्र के लोग ही ईसाई बने। ज्यादातर लोग अनाथ हो जाने, अकाल, आर्थिक स्थिति खराब हो जाने या लोभ लालच मे आ जाने से ही ईसाई बनते थे। कुछ सीमा तक अग्रेजी शिक्षा ने भी नवशिक्षितो को ईसाई धर्म की ओर धकेल दिया।

राजस्थान के बाहर भारत के अन्य प्रान्तो मे भी ईसाई धर्म का इसी प्रकार प्रचार उन्निसवी शताब्दी मे हुआ। यह देखकर राम मोहनराय, केशवचन्द्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण, विवेकानन्द आदि ने हिन्दू धर्म का वास्तविक स्वरूप जनता के सामने रखा और उन्हे बतलाया कि ईसाई धर्म वास्तव मे इतना विकसित नही है जितना हिन्दू धर्म। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने न केवल ईसाई धर्म बल्कि मुस्लिम धर्म के भी इतने दोष बतलाये जिससे यह स्पष्ट हो गया कि ईसाई व इस्लाम धर्म हिन्दू धर्म से कतई अच्छे नही है। इससे हिन्दू अपने धर्म के मूल रूप की ओर काफी आकृष्ट हुए और ईसाई धर्म का प्रचार काफी सीमा तक रुक गया।

ईसाईयो के मुख्य फिरके पाच हैं— कैथोलिक (मूर्ति पूजक) प्रोटेस्टेन्ट (मूर्ति विरोधी), मेथोडिस्ट, चर्च ओफ इगलैण्ड और फ्री चर्च ओफ स्काटलैण्ड। प्रोटेस्टेण्ट (मूर्ति निषेधक) नागपुर के पादरी के मातहत और कैथोलिक (मूर्ति पूजक) आगरा के पादरी के नीचे हैं। इन लोगो का मिशन अकाल पीडित और रोगियो की सेवा अच्छी करता है।

पारसी धर्म[1] और आर्य धर्म एक ही मूल धर्म से निकला है। पारसी मूलतः ईरान के वासी है जो भारत मे ई० सन् 936 मे आये। आर्यों की भाति ये लोग अग्नि पूजक थे और इसका अभी तक निर्वाह करते हैं। इनके भी आर्यों की भाति चार वर्ण थे— आथ्रवन (ब्राह्मण), रथैस्तार (क्षत्रिय), वास्त्र्योष (वैश्य) और हुतोक्ष (शूद्र) इन धर्मावलम्बियों का धार्मिक ग्रथ अवेस्ता है जिसका रचियता जथुष्ट्र है। भाषा व भाव ऋग्वेद के मत्रो के समान ही है। ईरानी लोग सातवी शताब्दी तक काफी सुसस्कृत व उन्नति शील थे लेकिन सन् 651 मे अरबो ने ईरान पर हमला कर ईरानियों को काफी सख्या मे मुसलमान बना दिया। नवी शताब्दी तक ईरान की ज्यादातर जनता मुसलमान बन गई लेकिन तब वे अरबो पर ऐसे छा गये कि ईरानी भाषा जो फारसी भाषा भी कहलाने लगी इस्लाम की भाषा बन गयी और ईरानी सस्कृति ही इस्लाम की सस्कृति का पर्याय मानी जाने लगी। जो लोग इस्लाम धर्म को स्वीकार नही कर सके वे भारत मे चले आये। वे अपने साथ जथुस्त्र को ईश्वर द्वारा दी गई अग्नि ले आये और बम्बई मे मन्दिर बनवा कर वहा प्रज्वलित रखी जो आज

(1) पारसी –

पारसी मत के सस्थापक महात्मा जथुस्त्र का जन्म तेहरान के पास रहे नामक गाव मे ईसा मसीह से 1527 वर्ष पूर्व हुआ था। डाक्टर हाग के मतानुसार जथुस्त्र ने पजाब और काश्मीर के ब्राह्मणों से वेद पढे और उनका अनुवाद अपने देश की भाषा मे किया। यह भाषा ऋग्वेद की भाषा से मिलती जुलती है। इस ग्रन्थ का नाम महर्षि जथुस्त्र ने अपनी भाषा मे अवेस्ता रक्खा।

प्राचीन काल मे भारतवर्ष को छोडकर सम्पूर्ण एशिया, पूर्व दक्षिणी यूरोप और मिश्र मे भी यह मत फैला हुआ था। अब इस मत के लोग पारस देश मे और कुछ बम्बई प्रान्त मे ही पाये जाते हे। वे अपने को आर्य कहते हैं लेकिन दूसरे मतवाले उनको पारसी या अग्नि पूजक कहते हैं। ईसा की नवीं सदी मे जब मुसलमानो ने ईरान (पर्शिया) पर चढाई की और पारसी लोगो को मुसलमान होने के लिये तग किया, तब उनमे से कितने ही लोग अपने धर्म की रक्षा के लिये भारतवर्ष मे चले आये। इस समय के पारसी उन्हीं धर्मवीरों के वशज है। ये लोग लगभग सारे व्यवहारो मे हिन्दू ही होते है। इनका सिद्धान्त यह है — परमेश्वर अनादि, अनन्त और निर्विकार है। मूर्तिपूजा व जातपात व्यर्थ है। हवन, दया, गायों की रक्षा और शिखा सूत्र का धारण करना, सफाई से रहना, यही उपदेश इन्हे दिया जाता है। भारत मे यह लोग करीब एक लाख है।

तक जल रही है। इस धर्म के लोग राजस्थान मे कम ही है। ज्यादातर पारसी व्यापार करते हैं। कुछ लोग राजकीय सेवाओ मे भी है। शिक्षा व वैभव मे ये अन्य धर्मावलम्बियो से काफी आगे है।

सिक्ख धर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानक थे। गुरु नानक निराकर वादी थे और जात पात, तीर्थो, और मूर्ति पूजा के विरूद्ध थे। वे ईश्वर को सर्व व्यापी मानते थे। सिक्ख धर्म मे नानक के बाद, अगद, अमरदास, रामदास, अर्जु नदेव, हरगोविन्द्र, हरराम, हरकृष्णराय, तेजबहादुर, और गोविन्दसिंह गुरु हुए। गोविन्दसिंह ने अपने धार्मिक ग्रन्थ "ग्रन्थ साहिब" को ही पथ का गुरु घोषित कर दिया। इस कारण उनके बाद कोई गुरु नही हुआ। ग्रन्थ साहिब मे सभी गुरुओ के वचन और पद सग्रहित है। सिक्ख धर्म, प्रारम्भ मे शान्ति प्रिय एवम् भावुक भक्तो का सम्प्रदाय था लेकिन बादशाह जहागीर तथा औरगजेब के अत्याचारो के कारण इनमे सामरिकता आ गयी। इस्लाम के अल्लाहो अकबर की भाति ही सिक्ख धर्म का नारा हो गया "सत श्री अकाल"। धर्म के नाम पर जितने बलिदान सिक्खो ने दिये उतने कम ही और धर्म वालो ने दिये है। यो हिन्दू धर्म व सिक्ख धर्म एक ही धर्म है। हिन्दुओ की भाति सिक्ख धर्म मे भी जात पात, छुआछूत आदि है। हिन्दुओ और सिक्खो बीच वैवाहिक सम्बन्ध भी होते हैं लेकिन जाति के अनुसार। सिक्खो की ज्यादा सख्या बीकानेर राज्य मे हैं।

इस प्रकार राजस्थान का प्रमुख धर्म हिन्दू है। हिन्दू धर्मावलम्बियो के अनुपात मे मुस्लिम धर्मावलम्बी काफी कम है। इतना होते हुए भी यहा हिन्दू और मुसलमान काफी सौहार्दपूर्ण वातावरण मे रहते है। अलवर राज्य मे कुछ साम्प्रदायिक दगे अवश्य होते रहते है लेकिन इसका जहर फैलाने वाले राजस्थान के बाहर के असामाजिक तत्व हैं। अन्यथा सभी राज्यो मे हिन्दू और मुसलमान मिल कर रहते हैं। यह अवश्य है कि खान पान, विवाह सम्बन्धो व रीति रिवाजो के पालन मे कोई एकता नही है। यही बात ईसाईयो के सम्बन्ध मे है। हिन्दुओ के लिये ईसाई व मुसलमान अछूत ही है और जब तक इन तीनो धर्मावलम्बियो मे छुआछूत चलेगा तब तक इनमे एकता नही हो सकेगी।

पारसी धर्म[1] और आर्य धर्म एक ही मूल धर्म से निकला है। पारसी मूलत. ईरान के वासी है जो भारत मे ई० सन् 936 मे आये। आर्यों की भाति ये लोग अग्नि पूजक थे और इसका अभी तक निर्वाह करते है। इनके भी आर्यो की भाति चार वर्ण थे— आथ्रवन (ब्राह्मण), रथेस्तार (क्षत्रिय), वास्त्र्योष (वैश्य) और हुतोक्ष (शूद्र) इन धर्मावलम्बियो का धार्मिक ग्रथ अवेस्ता है जिसका रचियता जथुस्त्र है। भाषा व भाव ऋग्वेद के मत्रो के समान ही है। ईरानी लोग सातवी शताब्दी तक काफी सुसस्कृत व उन्नति शील थे लेकिन सन् 651 मे अरबो ने ईरान पर हमला कर ईरानियो का काफी सख्या मे मुसलमान बना दिया। नवी शताब्दी तक ईरान की ज्यादातर जनता मुसलमान बन गई लेकिन तब वे अरबो पर ऐसे छा गये कि ईरानी भाषा जो फारसी भाषा भी कहलाने लगी इस्लाम की भाषा बन गयी और ईरानी सस्कृति ही इस्लाम की सस्कृति का पर्याय मानी जाने लगी। जो लोग इस्लाम धर्म को स्वीकार नही कर सके वे भारत मे चले आये। वे अपने साथ जथुस्त्र को ईश्वर द्वारा दी गई अग्नि ले आये और बम्बई मे मन्दिर बनवा कर वहा प्रज्वलित रखी जो आज

---

(1) पारसी –

पारसी मत के सस्थापक महात्मा जथुस्त्र का जन्म तेहरान के पास रहे नामक गाव मे ईसा मसीह से 1527 वर्ष पूर्व हुआ था। डाक्टर हाग के मतानुसार जथुस्त्र ने पजाब और काश्मीर के ब्राह्मणों से वेद पढ़े और उनका अनुवाद अपने देश की भाषा मे किया। यह भाषा ऋग्वेद की भाषा से मिलती जुलती है। इस ग्रन्थ का नाम महर्षि जथुस्त्र ने अपनी भाषा मे अवेस्ता रक्खा।

प्राचीन काल मे भारतवर्ष को छोड़कर सम्पूर्ण एशिया, पूर्व दक्षिणी यूरोप और मिश्र मे भी यह मत फैला हुआ था। अब इस मत के लोग पारस देश मे और कुछ बम्बई प्रान्त मे ही पाये जाते है। वे अपने को आर्य कहते हैं लेकिन दूसरे मतवाले उनको पारसी या अग्नि पूजक कहते हैं। ईसा की नवीं सदी मे जब मुसलमानों ने ईरान (पर्सिया) पर चढाई की और पारसी लोगो को मुसलमान हाने के लिये तग किया, तब उनमे से कितने ही लोग अपने धर्म की रक्षा के लिये भारत-वर्ष मे चले आये। इस समय मे पारसी उन्हीं धर्मवीरों के वशज है। ये लोग लगभग सारे व्यवहारों मे हिन्दू ही होते है। इनका सिद्धान्त यह है — परमेश्वर अनादि, अनन्त और निर्विकार है। मूर्तिपूजा व जातपात व्यर्थ है। हवन, दया, गायो की रक्षा और शिखा सूत्र का धारण करना, सफाई से रहना यही उपदेश इन्हे दिया जाता है। भारत मे यह लोग करीब एक लाख है।

तक जल रही है। इस धर्म के लोग राजस्थान मे कम ही है। ज्यादातर पारसी व्यापार करते हैं। कुछ लोग राजकीय सेवाओ मे भी है। शिक्षा व वैभव मे ये अन्य धर्मावलम्बियो से काफी आगे हैं।

सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक थे। गुरु नानक निराकर वादी थे और जात पात, तीर्थो, और मूर्ति पूजा के विरूद्ध थे। वे ईश्वर को सर्व व्यापी मानते थे। सिक्ख धर्म मे नानक के बाद, अगद, अमरदास, रामदास, अर्जुनदेव, हरगोविन्द्र, हरराम, हरकृष्णराय, तेजबहादुर, और गोविन्दसिंह गुरु हुए। गोविन्दसिंह ने अपने धार्मिक ग्रन्थ "ग्रन्थ साहिब" को ही पथ का गुरु घोषित कर दिया। इस कारण उनके बाद कोई गुरु नही हुआ। ग्रन्थ साहिब मे सभी गुरुओ के वचन और पद सग्रहित है। सिक्ख धर्म, प्रारम्भ मे शाति प्रिय एवम् भावुक भक्तो का सम्प्रदाय था लेकिन बादशाह जहागीर तथा औरगजेब के अत्याचारो के कारण इनमे सामरिकता आ गयी। इस्लाम के अल्लाहो अकबर की भाति ही सिक्ख धर्म का नारा हो गया "सत श्री अकाल"। धर्म के नाम पर जितने बलिदान सिक्खो ने दिये उतने कम ही और धर्म वालो ने दिये हैं। यो हिन्दू धर्म व सिक्ख धर्म एक ही धर्म है। हिन्दुओ की भाति सिक्ख धर्म मे भी जात पात, छुआछूत आदि है। हिन्दुओ और सिक्खो बीच वैवाहिक सम्बन्ध भी होते हैं लेकिन जाति के अनुसार। सिक्खो की ज्यादा सख्या बीकानेर राज्य मे हैं।

इस प्रकार राजस्थान का प्रमुख धर्म हिन्दू है। हिन्दू धर्मावलम्बियो के अनुपात मे मुस्लिम धर्मावलम्बी काफी कम है। इतना होते हुए भी यहा हिन्दू और मुसलमान काफी सौहार्दपूर्ण वातावरण मे रहते हैं। अलवर राज्य मे कुछ साम्प्रदायिक दगे अवश्य होते रहते हैं लेकिन इसका जहर फैलाने वाले राजस्थान के बाहर के असामाजिक तत्व हैं। अन्यथा सभी राज्यो मे हिन्दू और मुसलमान मिल कर रहते हैं। यह अवश्य है कि खान पान, विवाह सम्बन्धो व रीति रिवाजो के पालन मे कोई एकता नहीं है। यही बात ईसाईयो के सम्बन्ध मे है। हिन्दुओ के लिये ईसाई व मुसलमान अछूत ही है और जब तक इन तीनो धर्मावलम्बियो मे छुआछूत चलेगा तब तक इनमे एकता नही हो सकेगी।

शिक्षा

मुसलमानो के आने के पूर्व यहाँ की शिक्षा पुराने ढग से संस्कृत व प्राकृत भाषा मे हुआ करती थी। उस समय शिक्षा बिना किसी शुल्क के दी जाती थी और गरीब विद्यार्थियो को भोजन व वस्त्र भी गुरु या पाठशाला की ओर से दिये जाते थे। मुसलमानी काल मे युद्धो की ज्यादा हलचलो से लोगो मे शिक्षा का रग बिगड गया। इसका यह परिणाम हुआ कि लोग निरक्षर होकर अविद्या के अन्धकार मे फँस गये। अग्रेजो के आने तक यही हाल रहा। लोग पाठशाला या मकतब मे जाकर साधारण लिखना पढना या काम चलाऊ हिसाब सीख लेते थे। ठाकुर या जागीरदार और धनो मानी लोगो ने तो यह समझ रक्खा था कि पढना लिखना ब्राह्मणो का ही काम है। इधर ब्राह्मण स्वय भी पचाग-टीपणा देखकर वार तिथि बतलाना, भागवत की कथा करना या एकादशी महात्मय पढकर सुना देने मे ही अपनी विद्या का पूर्ण होना समझ बैठे थे। वैश्यो का यह हाल था कि बिना कानामात्रा के केवल अक्षर लिखना सीख लेना और चिट्ठी पत्री लिखना, बही खाता रखना, अपनी शिक्षा की इति श्री समझते थे। शूद्रो का तो कहना ही क्या ? उनका लिखने पढने का अधिकार ही नही समझा जाता था।

सन् 1818 मे अग्रेजो से सन्धिया हो जाने के बाद राजस्थान मे अग्रेजो शिक्षा का प्रचार आरम्भ हो गया। अजमेर मे सन् 1819 से अग्रज पादरी जाबेज को शिक्षा अधीक्षक नियुक्त किया गया और अजमेर तथा पुष्कर मे स्कूल खोली गई। सन् 1822 म भिनाय और केकडी मे भी स्कूले खोली गई। इन स्कूलो मे कम ही लडके पढने आते थे। इन स्कूलो मे ईसाई धर्म के प्रचार पर ज्यादा ही जोर दिया जाता था। अत जनता मे ये स्कूले लोकप्रिय नही हो सकी। इस कारण ये स्कूल शीघ्र ही बन्द हो गई। बाद मे मेकाले की नई शिक्षा नीति के अनुसार अजमेर मे एक स्कूल मई 1836 मे पुन खोली गई। यह स्कूल भी वित्तीय स्थिति कमजोर होने, बार बार अकाल पडने व लडको द्वारा पढाई मे रूचि न लेने के कारण सन् 1843 मे बन्द कर दिया गया। जब जनता मे अग्रेजी शिक्षा के प्रतिकुछ रूचि जागृत हुई तब सन् 1851 मे यहाँ स्कूल पुन खोला गया और इसमे 230 छात्र भर्ती किये गये। इस स्कूल के छात्रो ने हाई स्कूल की परीक्षा पहली बार सन् 1861 मे दी और तब यह हाई स्कूल कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हो गया। यही हाई स्कूल सन् 1868 मे इण्टर कॉलज बना दिया गया।

राज्यों मे पहला सरकारी स्कूल सन् 1842 मे अलवर में खोला गया। इसमें अंग्रेजी शिक्षा सन् 1858 से दी जाने लगी। जयपुर में भी सन् 1844 में स्कूल खोली गई जिसमें सन् 1873 तक 800 छात्र हो गये। सन् 1873 में यह स्कूल इण्टर कॉलेज बना दिया गया। जयपुर में सन् 1869 में तथा पाली मे सन् 1873 मे एन्ग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल खोले गये। यहाँ के महाराजा जसवन्तसिंह ने अपने नाम से सन् 1893 मे एक इण्टर-मीडियेट कॉलेज खोला जो सन् 1898 मे डिग्री कॉलेज बन गया।

अन्य राज्यो में भी अंग्रेजी शिक्षा हेतु स्कूलें खोली गईं। झालावाड व बून्दी में सन् 1863 मे खोली गई। बीकानेर राज्य म सन् 1872 म स्कूल खोली गई लेकिन वहाँ अंग्रेजी शिक्षा सन् 1885 म आरम्भ की गई। उदयपुर मे स्कूल सन् 1863 म खोली गई लेकिन अंग्रेजी शिक्षा सन् 1865 में आरम्भ की गई।

सन् 1869 की मार्च माह मे ईसाई पादरियों ने अपना पहला मिशन ब्यावर मे स्थापित किया और तब ही एक स्कूल वहाँ खोला गया। यह स्कूल बहुत अच्छी तरह चलता रहा लेकिन जब कुछ मेहतर लडको को इस स्कूल मे भर्ती किया गया तब 69 मे से दो तिहाई लडकों ने स्कूल छोड दिया। सन् 1862 मे अजमेर मे भी एक मिशन स्कूल खोला गया। तब भी कुछ मेहतर लडको का भर्ती किये जाने पर 103 लडको मे से केवल 11 लडके— 7 मुसलमान व 4 हिन्दू रह गये। नसीराबाद टॉडगढ, देवली व जयपुर मे भी क्रमश 1862, 1864, 1871 व 1872 मे मिशन स्कूल खोले गये। मिशन ने लडकियो की शिक्षा के लिये सन् 1862 मे नसीराबाद म और सन् 1863 मे अजमेर मे स्कूल खोले।

स्कूलों के साथ ही साथ मिशन ने मुद्रणालय भी स्थापित किये। सन् 1867 मे ब्यावर मे लियो प्रेस खोला गया। इसमें पढाई की पुस्तकों के अलावा धार्मिक पुस्तकें भी छपती थी। या जयपुर मे भी महाराजा रामसिंह ने सन् 1862 मे ही एक लियो प्रेस स्थापित कर दिया था। सन् 1869 मे ब्यावर के लियो प्रेस मे सरकारी 'राजपूताना गजट" (साप्ताहिक) छपने लगा।

ई० सन 1863 तक विभिन्न राज्यो मे केवल 13 राजकीय स्कूल तथा 569 निजि स्कूल थे जिनमे क्रमश 2222 तथा 12 495 छात्र व

छात्राऐं पढती थी। राज्यो मे केवल जयपुर, भरतपुर व उदयपुर में ही कन्या पाठशाये थी जिनमे 102 छात्रायें पढती थी। अजमेर मेरवाडा मे अलग स्कूल थे। सन् 1872 की रिपोर्ट के अनुसार वहाँ 62 स्कूल थे जिनमे 2142 लडके व 290 लडकिये पढती थी।

ई० सन् 1870 मे राजकुमारो की शिक्षा के लिये अजमेर मे मैयो कॉलेज खोला गया। इससे भावी नरेशो को अंग्रेजी शिक्षा दी जाने लगी और उन्हे अंग्रेजी सस्कृति मे रगा जाने लगा। इस कॉलिज से शिक्षा प्राप्त नरेश भी अपने राज्यो मे शिक्षा का ज्यादा प्रसार नही कर सके। उन्नीसवी शताब्दी के अंत तक नाम मात्र के लडके शिक्षित हो सके। केवल 33,450 लडके ही स्कूल मे शिक्षा पाते थे। विभिन्न राज्य शिक्षा के लिये बहुत कम रकम खर्च करते थे। जयपुर, बीकानेर, उदयपुर, कोटा आदि रियासतें केवल 1·4 प्रतिशत तथा जोधपुर रियासत केवल 89 प्रतिशत रकम खर्च करती थी। अन्य छोटी रियासतो ने तो इस मद के अंतर्गत कुछ भी खर्च करने का विचार ही नही किया। न केवल रियासतो के नरेश बल्कि उनके अधीन जागीरदार भी फिजुल खर्ची मे रुपया पानी की तरह बहाते है, परन्तु ऐसे काम के लिए पूर्णतया उदासीन है। रियासतो की सरकारी सालाना रिपोर्ट और बजट देखने से स्पष्ट जाना जा सकता है कि शिक्षा पर कितना रुपया खर्च किया जाता है और राजकुटुम्ब पर कितना व्यय होता है। उदाहरण के लिये नीचे लिखे राज्यो के खर्च के आंकडे देखिये—

राज्य	राजकुटुम्ब पर व्यय	शिक्षा पर व्यय
बीकानेर	11 प्रतिशत	1 4 प्रतिशत
जोधपुर	16 प्रतिशत	0 89 प्रतिशत
अलवर	20 प्रतिशत	1 00 प्रतिशत

प्रारम्भिक शिक्षा की यह दशा है कि 7011 मनुष्यो या 31 वर्ग मील अथवा 17 ग्रामो के पीछे अलवर राज्य मे, 12,116 आदमियो या 230 वर्ग मील अथवा 33 ग्रामा के पीछे बीकानेर मे एक सरकारी स्कूल है। इसपर भी खास बात यह है कि कई राज्यो मे प्राईवेट (गैर सरकारी) शिक्षा को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता है। अलवर, जयपुर और जोधपुर आदि राज्यों मे स्वतन्त्र शिक्षण सस्थाये राज्य की आज्ञा बिना नही खोली जा सकती है।

उधर बहुत से जागीरदारो को यह आशका है कि प्रजा में शिक्षाका प्रचार बढा तो वे लोग अपने कर्तव्यो की अपेक्षा अधिकारों की माग अधिक पेश करेंगे। इसी भाव को लेकर जागीरदारो की जागीरो मे विद्या का प्रचार है ही नही। मारवाड दरबार की सन् 1923-1924 की वार्षिक रिपोर्ट के पृष्ठ 62 का अवलोकन करने से पता चलता है कि—

'दुर्भाग्यवश स्वय अशिक्षित होने के कारण वे (जागीरदार) अपनी प्रजा की शिक्षा के प्रति कम ही उत्साह रखते है। वास्तव मे उनमे से कुछ को यह गलत फहमी है कि शिक्षा पा जाने से उनकी प्रजा अपने कर्तव्यो के बदले अधिकारो के विषयो मे ज्यादा सोचने लगेगी। ऐसी परिस्थितियो मे जागीरी क्षेत्रो मे शिक्षा की कोई प्रगति नही हुई है और जबतक इस समस्या का हल नही निकाला जाता, शिक्षा के क्षेत्र मे राज्य पिछडा ही रहेगा।"

हम यहा झालावाड नरेश की प्रशसा किये बिना नही रह सकते, जहा शिक्षा के लिये आमदनी के हिसाब से कुछ ज्यादा ही खर्च किया जाता है।

राजस्थान की जनता की शिक्षा पिछडी हुई है तो है ही परन्तु यही दशा यहा के जागीरदारो, रईसो आदि की भी है। वे पढने लिखने मे बिलकुल रुचि नही रखते है। वे अधिक से अधिक अपना नाम लिख देना यथेष्ट समझते हैं जिससे उनको बहुधा काफी हानि पहुँचती है। एक ठाकुर से पूछा गया कि "ठाकुरा किता पढिया" (ठाकुर साहब आप कितने पढे है?)। उत्तर मिला— "हाथमु करम फोडा जीता" अर्थात् हाथ से अपनी बरबादी कर सके उतना। तात्पर्य यह है कि वे बोहरो के लिखे कागजो पर हस्ताक्षर कर सकते है। अशिक्षित होने से इनके विचार भी समयानुकुल नही होते है। उनके लिये निम्न इच्छाए पूर्ण हो जाना ही सब कु : है.—

चाकर गोली होय, जमी बहे बारणे।
मदवो महलो माय, प्यारी रे कारणे॥
कामेतियो करे काम, ढोली नित गावणा।
इतरा दे किरतार, फेर काई चावणा॥

अर्थात् चाकरी के लिए दास और दासिया हो, भूमि अपने अधिकार मे हो, महल में प्रेयसी के साथ विलास के लिए मदिरा हो, काम काज सभालने को कामदार हो और गाना सुनाने के लिए ढोली हो, फिर किसी वस्तु की इच्छा नहीं है।

राजस्थान मे पढे लिखे स्त्री पुरुषो की सख्या केवल 4 प्रतिशत है। इसमे स्त्री शिक्षा तो नाम मात्र की है। जो स्त्रिया पढी लिखी है वे केवल साधारण पत्र पढ लिख सकती है। उनमे इनी गिनी स्त्रिया ही ऐसी मिलेगी जो हिन्दी की साधारण पुस्तक को समझ सके या कोई समाचार पत्र पढ सके। राजस्थान मे स्त्रियो के लिये एक भी कॉलेज नही है और न कोई हाई स्कूल ही है (जयपुर के सिवाय)। एक हजार मे केवल दो स्त्रिया ही लिखना पढना जानती है। पाठको को यह जानकर आश्चर्य होगा कि राजस्थान की 48 लाख स्त्रियो मे से अब तक (सन् 1929) केवल दो महिलाओ ने मैट्रिक पास किया है। कुछ रियासतो म जो दस-पाँच लडकिया प्रति वर्ष हिन्दी मिडिल पास करती है, उनमे से अधिकांश बाहर से आये हुए हाकिमो की और अन्य राजकर्मचारियो की पुत्रियाँ होती है। स्त्री शिक्षा के अभाव के कारण है— पर्दा, बालविवाह और पाठशालाओ की कमी तथा इस प्रान्त की निधनता। कई राज्यो की अधिकाश आय फिजुल खर्ची मे निकल जाती है और विद्या प्रचार जैसे जन हितकर कार्य वैसे ही रह जाते हैं।

राजस्थान मे कॉलेजो की सख्या 9 है और हाई स्कूल 52 है। इनमे अजमेर मेरवाडा जिले के 12 हाई स्कूल और दो कॉलेज भी शामिल हैं। इनमे से कई ईसाई पादरियो के द्वारा और कई राज्यो की आर्थिक सहायता से भिन्न-भिन्न जातियो की ओर से चल रहे है। जितना खर्च शिक्षा पर होना चाहिये वह रियासतो द्वारा नही किया जाता है। इस विषय मे सराहने योग्य झालावाड राज्य है जिसमे आमदनी के लिहाज से शिक्षा पर सबसे अधिक खर्च किया जाता है। शिल्प कला सीखने के लिये केवल एक स्कूल जयपुर मे है जो स० 1925 (ई० सन् 1868) म स्थापित हुई थी। यूरोपियन व एग्लो इण्डियन (अधगोरो) की पढाई के लिये 'लारेन्स स्कूल' आबू पहाड पर है जिसमे केवल उन्ही के बालक पढते है। वहाँ मिडिल स्कूल भी है जिसे भारत सरकार से सहायता मिलती है। रेल्वे की तरफ से एक हाई स्कूल रेल्वे स्टेशन आबूरोड पर है।

छोटे-छोटे जागारदारो की पढाई के लिए अलग अलग राज्यो मे नोबल्स स्कूल स्थापित हो गये है परन्तु जैसी शिक्षा इन सरदारो व राज कुमारो को इन स्कूलो मे मिलती है वैसी सब साधारण स्कूलो से दूर रह कर उन्हे नही मिल सकती है क्योकि विद्यार्थियो मे ऊँच-नीच अमीर-गरीब का भेदभाव बना रहने से शासक व प्रजा मे सहानुभूति नही रह पाती है।

दूसरे प्रान्तो की अपेक्षा राजस्थान मे शिक्षा बहुत पिछड़ी हुई है।[1] लेकिन जो कुछ शिक्षा अंग्रेजी ढग से मिलती है वह विद्या नही कही जा सकती है। वह केवल अंग्रेजी सिखा कर राजकर्मचारी क्लर्क बनाने वाली तथा खर्चीली है। यहाँ तक कि उपयोगी होने कि बात तो दूर रही राष्ट्रीय भावना व स्वतन्त्रता की भावना भी इस पढाई म नही होती है। इसी से अपनी रोटी कमाने का साधन भी इस शिक्षा से होना कठिन हो रहा है। इसमें केवल भाषा ज्ञान व पुस्तक ज्ञान से ही विद्यार्थियो का समय चला जाता है। व्यवहारिक कला - कौशल व रोजी का साधन उन्हें मालूम नही होने पाता है। इसका कारण यह भी है कि शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा नही होता है। अब इस ओर विद्वानो का ध्यान गया है और मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने की बात चल रही है।[2]

---

1 सन् 1931 की जनगणना के समय कुल पढ़े लिखे 4,07 136 थे जिनमे महिलायें 25 534 थी। अंग्रेजी जानने वाले 29,895 थे जिनमे महिलायें 1686 थी (राजस्थान जनगणना रिपोर्ट 1931) सन् 1941 मे सबसे ज्यादा पढ़े लिखे झालावाड़ मे 8 और बीकानेर मे व किशनगढ़ मे 7 प्रतिशत थे। बांसवाड़ा व डूंगरपुर मे पढ़े लिखों का प्रतिशत क्रमशः 2 8 व 3 था जो सबसे कम था (राजस्थान जनगणना रिपोर्ट 1941) अब सन् 1971 की जनगणना के अनुसार शिक्षितों का प्रतिशत 18 79 है जिनमे पुरुषो का 28 42 प्रतिशत व स्त्रियो का 8 26 प्रतिशत है। जिला वार सबसे ज्यादा शिक्षित अजमेर मे 30 19 प्रतिशत तथा सबसे कम शिक्षित बाड़मेर मे 10 02 प्रतिशत है (राजस्थान जनगणना रिपोर्ट 1971)।

2 राजस्थानी भाषा का राजस्थान के स्कूलो आदि में पढाये जाने के विषय मे लेखक ने 1925 से ही प्रयास प्रारम्भ कर दिये थे। उन्होने 21 फरवरी 1925 का 'तरुण राजस्थान" मे एक वक्तव्य दिया था कि राजस्थान की भाषा राजस्थानी है। उन्होंने बतलाया की राजस्थान की उन्नति जैसी राजस्थानी भाषा के द्वारा की जा सकती है वैसी हिन्दी के द्वारा नहीं की जा सकती है। अतः शीघ्र ही राजस्थानी साहित्य सम्मेलन (अकादमी) की स्थापना होनी चाहिए। (तरुण राजस्थान 21 फरवरी 1925 पृष्ठ 9)। यह प्रसन्नता की बात है कि श्री जगदीशसिंहजी गहलोत के इस वक्तव्य के लगभग 50 वर्ष बाद अब केन्द्रीय साहित्य अकादमी ने राजस्थानी भाषा को मान्यता दे दी है और भारतीय संविधान की आठवीं सूचि मे राजस्थानी भाषा को राष्ट्रीय स्तर की भाषा के रूप में सम्मिलित करने के प्रयत्न किये जा रहे है। राजस्थान के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने हायर सेकेन्डरी में राजस्थानी को एक ऐच्छिक विषय बना दिया है। राजस्थान के विश्व विद्यालयों मे भी एम ए तक मे राजस्थानी पढाई जाने लगी है। राजस्थानी भाषा की स्वतन्त्र अकादमी की स्थापना करने की मांग की जा रही है। इस प्रकार स्वर्गीय श्री गहलोतजी का स्वप्न साकार होता दिखाई दे रहा है।

भाषा

राजस्थान की भाषा को "राजस्थानी" कहते हैं। इसके मुख्य 7 विभाग हैं— मारवाडी, ढूंढाडी, हाडोती, मेवाती, वागडी, मेवाडी और व्रजभाषा। वैसे तो उप-शाखाए स्थान भेद से 100 से अधिक हैं परन्तु इन्ही 7 उपभाषाओ मे उनका समावेश हो जाता है।

मारवाड, बीकानेर, जैसलमेर और सिरोही राज्यो मे मारवाडी, बूँदी, कोटा, शाहपुरा, झालावाड मे हाडोती, जयपुर राज्य मे ढूँढाडी; अलवर मे मेवाती, मेवाड मे मेवाडी, भरतपुर, धौलपुर व करौली मे व्रजभाषा और सिरोही, बाँसवाडा, डूँगरपुर व प्रतापगढ मे वागडी भाषा बोली जाती है। यह वागडी बोली गुजराती से मिलती जुलती भीलो की बोली है। राजस्थानी भाषा के इन विभिन्न रूपो मे विशेष अन्तर नही है।

सन् 1931 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार राजस्थान के 77 प्रतिशत व्यक्तियो की मातृभाषा राजस्थानी, 15 प्रतिशत की पश्चिमी हिन्दी व 6 प्रतिशत की भीली भाषा थी। जार्ज ग्रियसन के अनुसार राजस्थान की 4 भाषाये— मारवाडी, मध्यपूर्वी, राजस्थानी व उत्तरपूर्वी राजस्थानी व मालवी है। इस वर्गीकरण के अनुसार मारवाडी भाषा भाषी 50 प्रतिशत, मध्यपूर्वी राजस्थानी भाषा भाषी 19 प्रतिशत, उत्तर-पूर्वी राजस्थानी भाषा भाषी 4 प्रतिशत और मालवी भाषा भाषी 3 प्रतिशत है। जनगणना अनुसार इनकी सख्या इस प्रकार है—

मारवाडी	56,18,885
मध्यपूर्वी राजस्थानी	21,57,974
उत्तर पूर्वी राजस्थानी	4,78,941
मालवी	3,50,856
पश्चिमी हिन्दी	17 21,186
भीली	7,19,640
कुल	1,10,47,482

सामान्यत स्कूलो मे शिक्षा हिन्दी या उर्दू मे होती है अत पढे लिखे लोग अपनी मातृभाषा हिन्दी बतला देते है अन्यथा इन लगभग सतरह लाख लोगो की मातृभाषा राजस्थानी ही है। मारवाडी की 19 बोलीया हैं जो

रवाड, बीकानेर, जैसलमेर, मेवाड, सिरोही, शाहपुरा और जयपुर के नरी तथा पश्चिमी भागो मे बोली जाती है। मध्यवर्ती राजस्थानी यपुर के मध्यवर्ती तथा दक्षिणी भागो मे तथा बून्दी, कोटा, टोक व शनगढ मे बोली जाती है। उत्तरपूर्वी राजस्थानी अलवर, उत्तरी भरत-र व जयपुर के उत्तर पूर्व के भागो मे बोली जाती है। मालवी कोटा के छ भागों झालावाड, प्रतापगढ व टोक (निम्बेहडा व छावडा तहसीलों) मे ोली जाती है। पश्चिमी हिन्दी जयपुर, करौली, अलवर, भरतपुर के कुछ ागो व धौलपुर मे बोली जाती है। भीली बासवाडा, डूगरपुर, कुशलगढ, वाड, प्रतापगढ व सिरोही राज्यो के भीली क्षेत्रो मे बोली जाती है।

राजस्थान के कुछ भागो मे गुजराती व लहन्दा (पश्चिमी पजाबी) भी बोली जाती है। गुजराती बोलने वाला की सख्या केवल 20,064 है और इसके बोलने वाले डूगरपुर, मेवाड, बासवाडा व सिरोही मे ही है। लहन्दा बोलने वाले बीकानेर व जैसलमेर मे ही है। इनकी सख्या 12 840 है।

यहा की प्राचीन भाषा सस्कृत थी। सर्व साधारण की भाषा प्राकृत थी। प्राकृत के बाद यहाँ "अपभ्र श" का प्रचार हुवा। जैन विद्वानो ने अपभ्र श मे काफी साहित्य छठी से लेकर तेरहवी शताब्दी के बीच रचा। अपभ्र श राजस्थान की साहित्यक भाषा बन गई। इसी के लोक प्रचलित रूप राजस्थानी की आज से लगभग 1,000 वर्ष पूर्व उत्पत्ति हुई। इसका विशेष सम्बन्ध पजाब व सिन्ध की भाषा से रहा। राजस्थानी की एक शैली डिंगल नाम से प्रसिद्ध है। इस डिंगल भाषा मे भाट, चारण, राव, मोतीसर, ढाढी आदि जातियो के कवियो का प्राचीन साहित्य 10वी शताब्दी मे मिलता है। इसके सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रथ 'ढोलामारु रा दूहा' और 'वेलि क्रिसन रुखमणी री' तथा गद्य ग्रथ 'नैणसी री ख्यात' हैं। डिंगल साहित्य प्रधानतया वीर रसात्मक है। डिंगल शब्द 'डींग' और 'गल' शब्द से मिल-कर बना है। इसका अर्थ ऊँची बोली का है क्योकि इस भाषा के कवि उच्च स्वर से अपनी कविता का पाठ करते है। इसके विपरीत ब्रजभाषा की कविता मे ध्वनि उच्च नही होती और उसमे मधुरता विशेष होती है। इसलिये ब्रजभाषा से प्रभावित शैली की कविताओ को राजस्थान मे पिंगल अर्थात् पागली (लगडी-लूली) कविता कहते है। पिंगु का अर्थ लगडी और गल का मायना बात या बोली है। इसका मुख्य क्षेत्र पूर्वी राजस्थान रहा। इसमे कई सन्तो ने अपनी रचनायें की। कविराजा मुरारदान ने 'डिंगल'

शब्द का अर्थ अनघड पत्थर या मिट्टी का डगला (ढेला) किया है क्योकि इसमें गुजराती, मराठी, मागधी, सिन्धी, ब्रजभाषा, सस्कृत, फारसी, अरबी आदि कई भाषाओ के अपभ्र श शब्द पाये जाते हैं। अपभ्र श भी साधारण नही है। वह इतना ज्यादा है कि उसका असली रूप जान लेना भी कठिन हो जाता है जैसे—

सस्कृत मे—	डिंगल भाषा मे—
मुक्तापथ	मोताहळ
युधिष्ठिर	जुजठळ
ध्रुवभट	धुहड
श्रीहर्ष	सीहा या सीहड
हस्तवल	हाथल
आलभट	अलट

इस भाषा मे ट, ठ, ड, ढ, ण और ळ आदि अक्षरो की प्रधानता होती है और 'स' का प्रयोग प्राय 'ह' होता है। इस भाषा मे ऋ, ॠ, लृ, ए, ऐ, औ-- स्वर नही होते है और तालवी (श) और मूर्धनी (ष) के स्थान पर भी दन्ती सकार (स) ही लिखा व बोला जाता है। ऐसे ही 'ख' 'ष' लिखा जाता है।

यह भाषा बोलने मे व सुनने मे मीठी लगती है और उससे सभ्यता व शिष्टता झलकती है। इस भाषा की कुछ कहावतें नीचे दी जाती है जिनसे पता लगेगा कि वे सक्षेप मे होने पर भी कितनी मीठी और उपदेश भरी हुई है—

1 अनी चुका बीसा हो— अवसर चूकने से पछताने के सिवाय और कुछ नही बनता।

2 ठगाया मूँ ठाकर वाजे है— एकवार धोखा खाने से आदमी दूसरी बार चतुर हो जाता है।

3 कलसूँ होवे जो वलसूँ नही होवे— जो काम चतुराई से होता है वह पाशविक बल लगाने से कभी नहीं हो सकता है।

4 रोयाँ बिना तो माँ ही बोबो कोयनी दे— बिना आन्दोलन किए इष्ट की प्राप्ति नही हो सकती है ।

5 पूत रा पग पालणे पछाणीजे है— होनहार व्यक्ति के लक्षण झूले में झूलने ही के समय में प्रकट हो जाते हैं ।

6 रूप रूडो गुण बायरो रोईडे रा फूल— रोईडे का फूल रूप मे सुन्दर होते हुए भी गुणहीन होता है ।

7 वरुता रा बाया मोती नीपजे है— समय पर सब बातें बनती हैं ।

8 कथो एक दिसावर घणा— आदमी तो एक उसके करने को काम अनेक ।

9 पईसे री डोकरी टक्को सिर मूँडाई रो— एक पैसे की चीज पर दो पैसे खर्च करना ।

10 घर मे ऊँधरा धिड्याँ करे— घर मे खाने को अनाज नही है ।

11 घर फूटा ने कारी कोयनी — अपने ही घर का कोई व्यक्ति शत्रु पक्ष से मिल जाय तब हार निश्चय है ।

12. मूँछा रो चावल राखणो— घर मे चाहे कुछ भी न हो तो भी रहना इज्जत से ही ।

13 ऊँट खोडावे गधो डोभीजे— किसी का अपराध, कोई दण्ड पावे ।

14 मन बायरा पावणाँ घी घालू के तेल— बेमन कोई कार्य करना रूखा रहता है (बिना बुलाये मेहमानो का आदर नही होता है) ।

15 अक्कल शरीराँ उपजे दिया लागे डाँम— दूसरे के समझाने से समझ नही आती है जब तक खुद मे समझ न हो ।

16 आप व्यासजी बैंगण खावे, दूजे ने परमोद बतावे— आप बुरा कर्म करे लेकिन दूसरो को उसके न करने का उपदेश दें ।

17. एक न नो सौ दुःख टाले मौन— व्रत धारण करने से मनुष्य बहुत सी बुराईयो से वच जता है।

18 उखल मे माथो दिए पछे धमकाँ री कई गिनती— कार्य क्षेत्र मे कूद पडने पर दु ख-कष्ट से नही घवराना चाहिए।

19 मूँज वल गई पर बट कोयनी बलियो— वैभव नष्ट हो गया लेकिन अभिमान नही मिटा।

20 आंधे रो तँदुरो रामदेवजी वजावे— निर्वल का सहायक परमात्मा होता है।

21 कोठे होवे जीके होठा आय रेवे— जो मन मे होता है वही मनुष्य वचन से प्रकट करता है।

22 गूगरियाँ रा गोठिया ने खाया ने उठिया— मनुष्य के स्वार्थी मित्र सुख मे ही साथ देते हैं, विपत्ति में नही।

नगरो में खडी बोली का भी प्रयोग होता है। न्यायालयो मे फारसी शब्दो की भर-मार ज्यादा है। मुगल समय में यहाँ फारसी का जोर था और राजभापा होने से राज्य के काम मे आने के कारण इसका काफी महत्व था। अभी भी किसी सीमा तक इसी का प्रचलन है, जैसा कि किसी ने कहा है—

अगर मगर के सोले आने इकडम तिकडम वारा।
अटे कटे के अठ हिज आने, सु सा पईसा चारा॥

अर्थात् फारसी का मूल्य 16 आने है, मराठी का 12 आने, मारवाडी का 8 आने और गुजराती के 4 पेसा है। अब कई रियासतो के कार्यालयो में हिन्दी को भी स्थान दिया गया है।

—

लिपि

राजस्थान के प्राचीन लिपि ब्राह्मी थी। उसके बाद गुप्त लिपि का प्रचार हुआ। फिर कुटिल लिपि बनी और इस लिपि से दसवीं शताब्दी के लगभग वर्तमान देवनागरी लिपि बनी है। राजस्थान म इस समय नागरी लिपि का प्रचार है। मारवाडी की लेखन शैली विचित्र है। उसमे मात्राओ का ख्याल प्राय नही किया जाता है और एक ही पुरुष का लिखा हुआ कभी उससे भी नही पढा जाता है और कभी कुछ का कुछ अर्थ हो जाता है। महाजनी मुडिया अक्षरो का तो हाल ही बेहाल है। कहा भी है—

कनक पुत्र कागज लिखे, काना मात न देत।
हीग मिरच जीरो भखे, हग मर जर कर देत॥

इसका एक रोचक दृष्टान्त है कि किसी ने लिखा—"कक अजमर गया है न कक कटे है।" अर्थात् काका अजमेर गए है और काकी (चाची) कोटा म है मगर पढने वाले ने इस तरह पढ लिया कि काका आज मर गया है और काकी कटे है। इस प्रकार मारवाडी लिखावट साफ लिखी ही नही जाती है। इसलिये एक कहावत चली आती है कि 'आला बचे न आपसूं सूखा बचे न बाप सूं।' अर्थात् गीले अक्षर लेखक स्वय नही पढ सकता और सूख जाने पर, यानी कुछ समय बाद तो (वे अक्षर) उसके बाप से भी नही पढे जा सकते है। मारवाडी लिपि म शब्दो के बीच में अन्तर छोडना तो जानते ही नही हैं। अब अग्रेजी व देवनागरी की देखा देखी अन्तर छोडा जाने लगा हैं। मुस्लिम काल म फारसी लिपि का ज्यादा प्रचार हुआ। इस समय जयपुर, धौलपुर, टोंक व अजमेर की न्यायिक कार्यवाही फारसी म ही होती हैं। शेष रियासतो म लिखावट व बोली म देवनागरी तथा हिन्दी का प्रचार होने लगा है।

—

साहित्य

राजस्थान का साहित्य तीन श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है।[1]—

(१) सस्कृत एवम् प्राकृतक साहित्य,
(२) राजस्थानी साहित्य, एवम्
(३) हिन्दी साहित्य।

राजस्थान में सस्कृत साहित्य की ज्यादातर रचनाये जैनो तथा राज दरबारो के आश्रित कवियों द्वारा की गई। प्राकृत साहित्य की रचनाये केवल जैनो द्वारा की गई।

सस्कृत साहित्य की सबसे पहली कृति भीनमाल के महाकवि माघ का "शिशुपाल वध" है जो आठवी शताब्दी मे रचा गया। चित्तोड के हरिभद्र सूरि ने भी सस्कृत तथा प्राकृत मे कई रचनाये की। उनको "समर-इच्छा कथा" अत्यन्त प्रसिद्ध है। हरिभद्र सुरि के एक शिष्य उद्योतन सुरि ने जालोर मे "कुबलय माला कथा" की अशत· प्राकृत व अशत अपभ्रंस मे रचना ईस्वी सन् 779 मे की। सन् 906 में सिद्धऋषि ने "उपमिती भव प्रपचा कथा" की रचना की। अजमेर के चतुर्थ विग्रहराज चौहान ने प्रसिद्ध नाटक "हरकेली" की तथा उसके दरबार के कवि सोमदेव ने "ललित विग्रहराज" नाटक की रचना की। तृतीय पृथ्वीराज चौहान के दरबार के कवि जयानक ने "पृथ्वीराज विजय" लिखा।

जैन आचार्यो— वल्लभसुरि, जिनदत्तसुरि, जिनचन्द्रसुरि आदि ने भी सस्कृत तथा प्राकृत साहित्य मे अपूर्व योगदान दिया। मेघविजय ने सन् 1760 मे सप्त साधना महाकाव्य की रचना की। महाराणा कुम्भा ने जयदेव के "गीत गोविन्द" पर विद्वता पूर्ण टीका लिखी तथा सगीत पर "सगीतराज" ग्रथ की रचना की।

---

1. राजस्थान प्राचीन काल से ही साहित्य प्रेमी रहा है। राजस्थान के उत्तर पश्चिमी भाग मे सरस्वती नदी के किनारे ऋग्वेद के ज्यादातर भाग की रचना हुई। सम्भवत प्रारम्भिक ब्राह्मण व सूत्र ग्रन्थो की रचना भी यहीं हुई। प्रसिद्ध ज्योतिविज्ञ वराहमिहर तथा उसके ग्रन्थ का टीकाकार ब्रह्मगुप्त राजस्थानी ही थे। उसने भीनमाल मे ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त की रचना छठी शताब्दी मे की।

वज्रसेन सुरि ने सबसे पहले राजस्थानी काव्य "भरतेश्वर बाहुबलि गौरा" की रचना की। इसके बाद का राजस्थानी का प्रथम महत्वपूर्ण ग्रंथ "भरतबाहुबलि रास" है जिसको इस्वी सन् 1185 मे शालिभद्र सुरि ने रचना की। रास कविता नृत्य के साथ गायी जाती है। इसके बाद मे कई जैन लेखको ने रास तथा फाग रचे। फाग शृंगारिक काव्य होते है जिनमे वसन्त ऋतु का वर्णन होता है। जिनपद्म सूरि ने सन् 1330 मे सालिभद्र का फाग तथा सोम सुन्दर ने सन् 1428 में नेमीनाथ नवरस फाग की रचना की।

वीर गाथा काल का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ चन्द वरदायी कृत पृथ्वीराज रासो है। चन्द वरदाई अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था। इसमे पृथ्वीराज के जीवनवृत पर काफी प्रकाश डाला गया है। पृथ्वीराज रासो राजस्थानी का 'महाभारत" कहा जा सकता है। इसके बाद के अन्य रासो ग्रन्थ है— नरपति नाल्ह का वीसलदेव रासो दयालदास का राणा रासो, माधोदास दीधवाडिया का राय रासा, गिरधर आशिया का सगतसिंह रासो दौलतविजय का खुमाण रासो आदि। पदमनाभ का कान्हडदेव प्रबन्ध भी इतिहास के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसी प्रकार के तत्कालीन इतिहास की जानकारी देने वाले ग्रन्थ है— ढाढी बहादुर रचित वीरमायण, श्रीधर रचित रणमल छद, शिवदास की अचलदास री वचनिका, आदि।

सोलहवी शताब्दी मे भक्त मीराबाई ने सरल लौकिक राजस्थानी मे कई पद रचे जो भारत भर मे लोकप्रिय है। इसी प्रकार चन्द्रसखी के पद तथा बखतावर के पद भी भक्ति का अपूर्व भाव लिये हुए है। दादूदयाल, सुन्दरदास, रैदास आदि का भक्ति काव्य भी राजस्थानी की अमूल्य देन है।

राजस्थान मे कृपाराम के राजिया के दोहे बहुत प्रसिद्ध है। राजिया के अलवा भेरिया जेठवा, चिमनिया, नागजी आदि के नीतिपूर्ण दोहे भी बहुत लोकप्रिय है। राजस्थानी के ख्याल भी बहुत लोकप्रिय है। इन्हे भाट गाते फिरते जहातहा दिखाई दे जाते है। प्रसिद्ध ख्याल "जीणमाता री गीत" और 'डूगरी जवाहरजी री गीत" है। इनकी रसमय कविता किसी भी साहित्य की सरस कविता से टक्कर ले सकती है।

कई जैन साधुओ ने धर्म प्रचार हेतु गद्य मे धर्मकथायें लिखी। इनमे माणकचन्द्र का पृथ्वीचन्द्र चरित्र, प्रसिद्ध है। कुछ ग्रन्थो मे पद्य के साथ

गद्य सम्मिलित है। ऐसो मे शिवदास खीची की अचलदास री वचनिका है। राजस्थानी गद्य का वाद मे तो इतिहास ग्रन्यो, चरित्र व प्रेमकथाम्रो मे काफी प्रयोग हुआ।

इतिहास जानने के लिये "वात और ख्यात" अत्यन्त उपयोगी है। "मुहता नैणसी री ख्यात" अत्यन्त उपयोगी व महत्वपूर्ण है। इसमे राजस्थान तथा सौराष्ट्र के राजवशो पर काफी ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। अन्य प्रसिद्ध ख्यातें है— दयालदास री ख्यात, मु दियाड री ख्यात। वातो मे बीजा सोरठ री बात, अचलदास खीची री वात, चादकु वर री वात आदि प्रसिद्ध है।

इतिहास जानने के लिये बून्दी के सूरजमल का वश भास्कार अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ लगभग 2000 पृष्ठो मे अशत पिंगल मे व अशत राजस्थानी गद्य मे लिखा गया है। सूरजमल की दूसरी महत्वपूर्ण कृति "वीर सतसई" है जिसमे वीररस के सात सौ दोहे है।

इतिहास लेखको मे "वीरविनोद" के रचियता श्यामलदास तथा "राजपूताने के इतिहास' और "प्राचीन लिपिमाला" के लेखक गौरीशकर हीराचन्द ओझा प्रसिद्ध है। ये दोनो ग्रन्थ हिन्दीभाषा मे लिखे गये है। अग्रेजी भाषा मे हरविलास शारदा के ऐतिहासिक ग्रन्थ 'महाराणा कुम्भा" तथा 'महाराणा सागा" अत्यन्त प्रसिद्ध है।

राजस्थान मे अग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद राजस्थानी की कद्र कम हो गई क्योकि अग्रेज अधिकारियो के इशारे मे यहा गैर राजस्थानी अधिकारी नियुक्ति किये गये। गैर राजस्थाना अधिकारियो ने राजस्थानी के स्थान पर अपने मूल स्थानो की भाषा के अनुसार फारसी को महत्व दिया। यहा तक कि शिक्षा का माध्यम भी राजस्थानी को नही रखा। राजस्थानियो को शिक्षा देने मे उनकी मातृ भाषा राजस्थानी को कोई स्थान नही दिया गया। इन कारणो से यहा के ज्यादातर राज्यो के न्यायालयो की भाषा फारसी या फारसी मिश्रित हिन्दि हो गयी। राजस्थानी का स्थान काफी सीमा तक हिन्दी ने ले लिया। राजस्थानी की यह दुर्गति सबको खली लेकिन सब विवश थे। राष्ट्रीय चेतना के साथ [illegible]
भी यहा के लोगो का ध्यान गया। ऐसे [illegible]मे [illegible]
गुलाबचन्द नागोरी, सूर्यकरण पारीक न [illegible] अ
रामकरण आसोपा ने तो राजस्थानी [illegible] [illegible]निप

ग्रन्थ भी लिखा और राजस्थानी शब्दकोष तैयार किया। इसी प्रकार इत्तालवी विद्वान डाक्टर टैसीटोरी ने भी पश्चिमी राजस्थानी व्याकरण पर लेख लिखे। मुरारदान ने अमरकोष की शैली पर राजस्थानी शब्दकोष की रचना की। नरोत्तम स्वामी ने भी राजस्थानी भाषा और साहित्य पर काफी लिखा।

आधुनिक राजस्थानी पद्य में सबसे प्रसिद्ध बारठ केशरीसिंह की नवजागृति की राष्ट्रीय कवितायें हैं। ऊमरदान लालस ने भी बहुत सुन्दर व्यंग्यात्मक कवितायें लिखी।[1] उनका 'छपना रो छन्द" बहुत ही सुन्दर ढंग से सम्वत् 1956 के अकाल का वर्णन करता है। मेवाड के महाराज चतुरसिंह ने वैराग्य व भक्ति पर काव्य रचा। उनकी कविता "नारी" और "मरणो जानणो" काफी लोकप्रिय है।

राजस्थानी विद्वानों का ध्यान लोक साहित्य की ओर भी आकर्षित होने लगा है। राजस्थानी गीतों[2], कहावतों[3], वातालापों[4] आदि का भी संग्रह किया जाने लगा है।

इस प्रकार राजस्थान में साहित्य रचना बराबर होती आई है। यहां के प्राचीन साहित्य की खोज होना अभी बाकी है। आवश्यकता यह है कि राजस्थानी भाषा को यहां की शिक्षा का माध्यम बनाया जावे तथा न्यायालयों की भाषा भी राजस्थानी हो। इसी में राजस्थान का हित है।[5]

---

1. लेखक श्री जगदीशसिंहजी गहलोत ने ऊमरदान के काव्य पर ऊमर काव्य का सम्पादन सन् 1930 में किया।

2 लेखक ने लोकगीतों पर सर्व प्रथम संकलन सन् 1923 में "मारवाड के ग्राम गीत" के नाम से प्रकाशित किया।

3 लेखक ने राजस्थान की कृषि कहावतें सन् 1918 में प्रकाशित की।

4. लेखक ने राजस्थान के वार्तालापों का प्रकाशन सन् 1929 में किया।

5 पिछले वर्षों में राजस्थानी साहित्य में अनुसंधान, संकलन व सम्पादन काफी हुआ है। राजस्थानी पद्य भी बहुत कुछ लिखा जा रहा है। अब तो राजस्थानी का साहित्यक मान्यता प्राप्त हो गई है। आवश्यकता है कि राजस्थान के हिन्दी लेखक राजस्थानी को अपनावें तथा राजस्थान में शिक्षा का माध्यम राजस्थानी हो। राजस्थानी के गद्य में एक रूपता होना भी आवश्यक है। अत सर्वाधिक प्रचलित मारवाडी विभाषा को आधार बनाकर सरल गद्य में रचनायें की जानी चाहिए। इसमें अन्य विभाषाओं - ढूंढाडी, मेवाडी व मालवी का पुट होना आवश्यक है, ताकि ये लोकप्रिय हो सकें।

बाजे यहां प्रचलित थे। मध्यकाल मे गायन की शैली बदली और शृंगार रस का प्रचार हुआ। मुगल बादशाहो को गाने बजाने का बडा शौक रहा परन्तु औरंजेब को इससे नफरत थी। मुगल बादशाहत का पतन होने पर इस कला की कदर करने वाले केवल राजस्थान के राजा रह गये। इनके आश्रय मे कई पुस्तके सगीत विद्या पर लिखी गई और कई राजा भी सगीत के शौकीन थे। महाराणा कुम्भा सगीत विद्या मे प्रवीण थे। मेवाड के राजकुमार भोजराज की पत्नि मीराबाई की मलार राग अबतक प्रसिद्ध हैं।

सगीत मे उस्ताद अलाबन्दा और जाकिरुद्दीन खाँ के प्रसिद्ध घरानों ने राजस्थान मे आश्रय पाया था। इनकी गायकी भारत भर मे प्रसिद्ध हैं। इसी घराने ने ध्रुपद गायकी का एक विशेष अलाप और मोमतोम शैली का आविर्भाव किया। नाथद्वारा व काकरौली के मन्दिरो मे शास्त्रीय सगीत की स्वर लहरी भारत के लोगो को आकर्षित करती है। वहा कई अच्छे-अच्छे गायक वादक तथा पखावजिये हैं। जयपुर, बीकानेर, अलवर, करौली आदि राज्यो मे भी कई अच्छे गायक है जो भारत भर मे प्रसिद्ध है। राजस्थानी लोकगीत गाने मे लगे, ढोली मिरासी, भवाई, काँमड आदि अपनी सानी नही रखते है। इन सगीतकारो को यहा हेय दृष्टि से देखा जाता है तथा इनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नही होती है। इन्होंने लोक गायन और लोक वाद्यो मे जितनी प्रवीणता प्राप्त की है उतनी इनकी कदर नही की जाती है। आवश्यकता है कि इन्हे प्रोत्साहित किया जावे।

नृत्य

राजस्थान नृत्य कला मे काफी प्रसिद्ध रहा है। कत्थक नृत्य में भी काफी प्रसिद्ध रहा है। कत्थक नृत्य मे लखनऊ के बाद जयपुर ही केन्द्र बना हुआ है। जयपुर के नृत्यकारो ने एक नवीन कलात्मक रूप देकर इसको एक नई शैली-जयपुर शैली नाम दिया है। कत्थक नृत्य मे नारायण प्रसाद व उनके पिता हनुमान प्रसाद काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके है।

नाट्य

नाट्य कला मे परवतसर (जोधपुर राज्य) के कठपुतली नाच कराने वाले, मेवाड के भील जाति के गौरी नाच कराने वाले, बगडी (जोधपुर राज्य) के रासधारी वाले, घोसुण्डा (मेवाड) के ख्यालवाले प्रसिद्ध है। कठपुतलियों का कथा नृत्य देखने योग्य होता है। कठपुतली वाले काठ की पुतलियें लिये गाँव गाव मे फिरते दिखाई देते हैं।

हस्त कला

राजस्थान अपनी हस्तकलाओ के लिये प्रसिद्ध है। विदेशी वस्तुओ तथा कारखानो मे बनी वस्तुओ के सस्ते और प्रचुर मात्रा मे बनने का कारण इनका चलन कम अवश्य हो गया है लेकिन फिर भी कला पारखी व धनी लोगो की आँखो मे अभी भी ये विशिष्ट स्थान रखती है। जयपुर मे सूती कपडो की रगाई, छपाई का काम, सोने की जडाई मीनाकारी व सगमरमर की मूर्तियाँ अच्छी बनती है। भरतपुर मे चवर, हाथीदात का काम व चन्दन के पखे अच्छे होते है। बीकानेर मे ऊन के कम्बल, गलिचे और ऊँट के चमडे के कुप्पे बढिया बनते हैं। जैसलमेर मे भेडो के ऊन के कम्बल बकरे व ऊँट के बालो के थेले (बोरे), पत्थर के प्याले और रकाबी, किशनगढ मे छीट व कपडे की रगाई और खसखस के बने पखे प्रसिद्ध होते हैं। कोटा मे बारीक मलमल, मसूरिया, डोरिया, चादी के बर्तन, घोडो और हाथियो की साजे और हाथीदात का काम अच्छा होता है। मारवाड मे चूनडी की बन्धेज की कलापूर्ण रगाई कपडो की रगाई व बुनाई, कसीदेदार हल्के जूते तथा पीतल हाथीदात लाख और सगमरमर के खिलौने, ऊनी कम्बल, काठिये (जीन) पत्थर की चक्किय, बादले, और मिठाई अच्छी होती है। मेवाड की तलवार, कटार, कपडो पर सुनहरी छपाई और लकडी के खिलोने प्रसिद्ध है। इसी प्रकार शाहपुरा मे छपाई रगाई व बुनाई, सिरोही मे तलवार, भाले बरछी, तीर कमान और टोक मे कपडा बुनना, गाने, बजाने के साज—सितार, सारगी, तबला आदि और हाथीदात का काम अच्छा होता है।[1] अब ये देशी रोजगार समाप्त होते जाते हैं। हाथ से बुना हुआ रेजा (खादी) और चौखाने व डोरिया, जिमसे

---

1 आज भी जयपुर की मीनाकारी व नक्काशी की वस्तुएँ रत्न आभूषण, प्रस्तर प्रतिमायें मिट्टी के खिलौने, गलीचे, हाथीदात की वस्तुएँ, जोधपुर की कसीदा कारी की जूतियाँ, बटुए, लहरिया मोठडे, चुन्दडियाँ बादले उदयपुर की लकडी के खिलौने, भरतपुर का चन्दन का काम कोटा का मसूरिया डोरिया, सिरोही की तलवारें, चाकू व छूरे नाथद्वारा की मीनाकारी, सागानेर, चित्तोड, बगरु व बाडमेर के छापे, बीकानेर की लोहिया जैसलमेर का जाली का काम न केवल भारतवर्ष बल्कि विदेशों मे भी प्रसिद्ध हैं। चुन्दडी व बन्धेज के साफे जोधपुरी मोजरियों के शवन कसीद रसौरर, बाडमेरी छापों के स्कर्ट व साज सज्जा के रूप मे बराबर बढता जा रहा है। जयपुर तो समस्त विश्व मे प्राकृतिक व कृत्रिम रत्नों के लिए प्रमुख केन्द्र है ही (मरुधर महिमा-राजस्थान की हस्तकलाएँ, पृ 136)।

कोटा के जुलाहे व कोली जीविका चलाते आये हैं, अब उनकी कद्र नही रही हैं। ऊन के कम्बल और लोहियो का धन्धा जिससे मारवाड, बीकानेर, जयपुर आदि के मेघवाल, भाम्बी बलाई, चमार, रेगर, खटीक व कोली अपना धन्धा चलाते आये है, विदेशी तथा कारखानो की बनी हुई वस्तुओ के सामने नही टिक पाते है। या राज्यो से भी इन्हे कोई विशेष आश्रय नही मिल रहा है। अब ये सब खेती पर ही निर्भर रहने लगे हैं और किसानो के गले के भार बनने जा रहे है। भूमि यो भी कृषि हेतु कम है। अत खेतीहरो का यह भार अच्छा नही है। राज्यो को इन हस्त शिल्पकारो को सरक्षरण देना चाहिये ताकि काश्त की भूमि पर कम भार बढे।

रीति - रिवाज

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग की जातियो के विवाह, अन्त्येष्टी आदि के रीति रिवाज प्राय एक समान है। तथाकथित उच्च जातियो मे विधवा विवाह नही होता है। नातरायत राजपूत, काछेला चारण जाट, माली, गूजर, मीरणा, भील, दरोगा (रावरणा राजपूत), गरासिया आदि जातियों में पुनर्विवाह होता है। कुछ जातियो म बडे भाई के मरने पर उसकी स्त्री देवर से नाता कर लेती है। राजपूत, भील मीरणा आदि जातियो म बहु विवाह की प्रथा है। प्राय सब ही जातियो म बाल विवाह की प्रथा है। शादी व गमी के मौको पर फिजूल खर्ची लोगो के दबाव के कारण ज्यादा ही हुवा करती है। यह देखकर राजस्थान के एजन्ट टू गवर्नर जनरल कर्नल वाल्टर ने राजपूतो की अनक् सामाजिक बुराईयो को दूर करने के लिये प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियो का सम्मेलन कर एक सभा ई सन् 1888 की 10 मार्च को अजमेर म स्थापित की थी। दूसरे वार्षिक अधिवेशन पर 15 फरवरी सन् 1889 ई को इस सभा का नाम 'वाल्टर कृत राजपूत हितकारिणी सभा' रक्खा गया। राजस्थान के ए जी जी उसके स्थायी सभापति होते हैं। इस सभा की शाखाए प्रत्यक राज्य म तब से कायम है। इसका उद्देश्य राजस्थान के सरदारो म लेकर साधारण राजपूत तक म शादी, गमी आदि के मौके पर खर्च की पाबन्दी करना, वर-वधू की आयु के नियम की पाबन्दी रखना, विवाह क समय चारण, भाट और ढाली (दमामी) लोगो को त्याग (इनाम) देन क नियम बनाना व पालन करवाना है। राजपूतो म लडके की आयु शादी क वक्त 18 वर्ष और लडकी की 14 वर्ष नियत की गई है। जो व्यक्ति इसका उल्लघन करता है उसे दण्ड दिया जाता है। यह भी नियम है कि कोई भी कन्या 30 वर्ष मे

अधिक आयु तक कुँवारी नही रक्खी जावे और एक स्त्री के जीते जी दूसरी शादी नही की जाय जब तक कोई दूसरा कारण विशेष न हो। इस सभा का अधिवेशन प्रति वर्ष अजमेर में होता है। इन नियमो के अनुसार और जातियो ने भी फिजूल खर्ची घटाने के नियम बनाये है।

यहाँ के हिन्दुओ के धर्म कार्य ब्राह्मण पुरोहितो के हाथो मे होते है। इनके धार्मिक नियम मीताक्षरा स्मृति के अनुसार होते है और 16 सस्कारो को पुरोहित व पण्डित अपनी विद्या व बुद्धि के अनुसार जैसे तैसे निवाहते रहते हैं। हिन्दू जाति पर ब्राह्मणो का अबतक बडा प्रभाव है। पुत्र जन्मो तो मुहूर्त्त पुरोहितजी निकालते हैं। नामकरण सस्कार भी वही करते है। विवाह, सगाई आदि मे भी नाई के साथ-साथ ब्राह्मण भी शरीक होते है। कर्णवेध, जनेऊ, गृहशुद्धि, प्रतिष्ठा आदि अवसरो पर होम इन्ही के हाथ से होता है। ये चलते-फिरते सजीव पचाग है जो सुबह से शाम तक तिथिय, नक्षत्र, ग्रह, शकुन आदि बतलाने का काम करते है और अपने निर्वाह के लिये प्रात काल घर-घर फेरी देकर उच्च स्वर मे 'दिन दिन ज्योत (ज्योति) सवाई' का आशीर्वाद देते फिरते हैं।

राजपूतो का हाल निराला है। इनके पास समय काटने का कोई काम नही है। ये शराब व अफीम के नशे मे चूर रहते है और रावले (निवास स्थान) मे बैठे ढोली, ढाढी, पातरियो आदि के गीत सुनते व तमाशे देखते रहते हैं। अधिक से अधिक जोश आया तो शिकार को निकल पडते है या गाव के आस पास दुर्गा भवानी पर बकरा या भैसा चढाने को चले जाते है। जो साधारण स्थिति के है वे सेना व पुलिस मे भरती होकर राज्य या जागीरदारो की नौकरी करते है। जाति भोज और परस्पर दावतो मे राजपूत एक साथ ही थाली (थाल) मे भोजन करने मे बडा हर्ष मानते हैं। कन्या का जन्म होना ये बुरा मानते है, क्योंकि कन्या के विवाह पर टीका (तिलक), दहेज आदि मे बहुत खर्च करना पडता है। इसी से पहले राजा, उमराव आदि अपनी कन्याओ को मार डालते थे। यो अब भी कुछ लोग लुके छीपे अपनी लडकियो को मार डालते है। इनमे यह कहावत प्रसिद्ध है:—

पडो भलो न कोस को, बेटो भली न एक।
देणो भलो न बाप को, साहिब राखे टेक॥

अर्थात्-पैदल चलना तो एक कोस का भी अच्छा नही और एक कन्या का होना भी ठीक नही। कर्जा अपने बाप का किया भी भला नही है। ईश्वर इन बातो से बचा कर हमारी इज्जत रक्खे।

हिन्दुओ की भाँति मुसलमानो में भी जात पात का भेद भाव घुस गया है। उनमें भी मोची, महावत, भिस्ती, छीपा, धोबी, जुलाहा, कयामखानी, खानाजादा, सिलावट लखारा, रगरेज चढवा (बधारा), मीरासी, पीजारा सिन्धी कुँजडा, इत्यादि जुदा जुदा होते है और यदि कोई इस मर्यादा को तोडता है तो उसे पचायत कर जाति बाहर निकाल कर उसका हुक्का पानी बन्द कर देते है। वह व्यक्ति कुछ दण्ड (जुर्माना) देकर ही फिर वापिस जाति म शामिल हो सकता है।

राजस्थान मे अनेको जातिया ऐसी है जिनको नोमुसलिम कह सकते है। ये हिन्दू जातिया बादशाही जमाने मे जार जबर या लोभ-लालच से मुसलमान हुई। इनमे भेद से मलकाना और कायमखानी मुख्य हैं। इनमे कई रीति-रिवाज और धर्म की बात हिन्दुओ के समान आजतक पाई जाती हैं जैसे भरतपुर के मेव व मलकाने हिन्दुओ के देवी देवताओ को अबतक पूजने है। भोमियाजी व हनुमानजी का इष्ट रखते तथा अपने नाम के पीछे 'सिंह' शब्द लगाते हैं और शादिया मे फेरो के समय मुसलमान काजी और ब्राह्मण पुरोहित दोनो उपस्थित होते है। हिन्दुओ की तरह व धोती पहनते और स्त्रिया घाघरा (लहगा) पहनती है। इसी प्रकार अजमेर मेरवाडा जिला मे भी ये नोमुस्लिम माताजी, भैरोजी तेजाजी व रामदेव को पुजते है और हिन्दुओ के होली, दीवाली व राखी त्यौहारो को मानते हैं। जयपुर व जाधपुर के नौमुसलिमो मे हिन्दुओ के रस्म पाये जात है जैसे दुल्हा (बीदराजा) के शेहरा (मोर मुकट) बाधना पहेरावनी (दुल्ह के पक्ष वालो को कपडे आदि भेट करना), मेहदी लगाना मोली (कलावा) बाधना, शीतला पूजना इत्यादि। कोटा के नोमुसलिम लोगो मे यह रिवाज है कि वे शादी के मौको पर ज्योतिषी से लग्न पुछवाते हैं गणपति (विनायक) पूजते हैं काँकण डोरा बाधते है और हिन्दुओ के जसे ही गीत गाते है। बीकानेर मे भी यह रिवाज है। विवाह के समय काजी और ब्राह्मण दोनो रहते है। स्त्रिया हिन्दुओ के जैसे मगल गीत गाती हैं। एक ही खांप (चालू गोत नख) मे विवाह करन की भी मनाही हैं जैसी हिन्दुओ मे होती है। वे लोग माताजी, भैरोजी, गणेशजी, केसरिया कुँवर गोगाजी गणगौर व जवारा (जौ के उगाये हुए पौधे) का पूजन करते हैं। शादी के

मौके पर कुम्हार का चाक पूजने जाती है। इनका नामकरण और जन्मपत्री-टेवा भी ब्राह्मण द्वारा होता है। दसोटन, विवाह लग्न की रस्में भी ये करते हैं। तोरण भी बाँधते है। मारवाड मे भी इन मुसलमानो मे हिन्दुओ के जैसे रिवाज हैं। मृत्यु के दिन खाना नही पकाते हैं। जिसके घर मौत हुई हो उसके पडौसी या सम्बन्धी खाना खिलाते है। 10 दिन तक मातम की जाजम बिछाते हैं व जो लोग शोक-महानुभूति प्रकट करने आते है उनकी अफीम, तमाखु व बीडी से मनुहार करते हैं। मौसर (नुकता मृतक भोज) करते है। उठाना (शोक हटाने) की रीति भी काम मे लाते है।

अविद्या होने मे अबतक लोगो मे अंध विश्वास, जादू, टोना भूत-प्रेत और देवी, भैरो, भोपो व पीर-कबर की मानता चल रही है। यद्यपि बडे बडे कस्बो मे सामाजिक सुधार के लिए कई जातियो मे सभाए खुल रही है। फिर भी विवाह, होली आदि अवसरो पर अश्लील गन्दे गीत गाना और नाचने की प्रथा ज्यादा ही है।

खानपान

राजस्थान के अलग अलग राज्यो मे खानपान जुदा जुदा है। पश्चिमी भागो मे लोग बहुधा ज्वार बाजरी व मोठ पर निर्भर रहते है। दक्षिणी और पहाडी इलाको मे मक्की, ज्वार व गेहूँ पर लोग निर्वाह करते हैं। पूर्वी भागो मे गेहूँ अधिक खाते हैं। हिन्दुओ मे अधिकतर लोग शाकाहारी हैं। राजपूत बहुधा मास खाते है। उनको बकरे व शूअर का मास बडा प्रिय होता है। राजस्थान के देशी राज्यो मे गाय, बकरी, कबूतर, बन्दर, मोर, उल्लू और बिल्ली को मारने की सख्त मनाई है और यह महापाप गिना जाता है।

अधिकतर लोग दिन मे चार बार भोजन करते है। परन्तु उनका यह भोजन नाम मात्र का ही होता है—

मीरावन— सुबह का कलेवा।
रोटी— 11 बजे दिन का भोजन।
दोपहरी— तीन बजे दिन का भोजन।
ब्यालु सन्ध्या का भोजन।

सामान्य लोग गेहूँ, गुज्जी, बाजरी, ज्वार, मक्की की रोटियां राबड़ी के साथ या साग तरकारी के साथ खाते है या मिर्च व नमक की चटनी के साथ खाते है। अमीर लोगो को ही चावल व गेहूँ की रोटिया (फुल्के) व मिठाई नसीब होती है। किसान अधिकतर कर्ज मे डूबे हुए और गरीब होने से एक वक्त की रोटी भी पेट भर कठिनता से पाते हैं। ये लोग रुखा सुखा, दलिया, खीच, सोगरा आदि खाते है, जैसा कि एक कहावत मे स्पष्ट होता है—

बूरा करसा खाय, गेहूँ जीमे वाणिया।

अर्थात् किसान एद बूरा अनाज (घटिया अनाज) खाकर अपने कर्जे पेटे गेहूँ बोहरो (महाजनो) को देते है।

तरकारी के लिए गरीब लोग केर, कुमट, फोग, सागरी, पीलु आदि वनैले पेडों की फलिया काम मे लाते हैं। उनको गोभी, सलगम आदि की वस्तुऐ त्यौहार पर भी नसीब नही होती है। उनको चावल भी त्यौहार पर ही मिलता है। उपरोक्त खाद्य पदार्थों की विशेष व्याख्या इस प्रकार है—

सोगरा— बाजरे के आटे की सेकी हुई सख्त रोटी जो कम से कम 7-8 तोले वजन की होती हैं।

राब— छाछ मे बाजरे का आटा घोलकर सुबह या शामको उबाला जाता है और दूसरे दिन खाया जाता है।

खीच— बाजरे को ओखलो मे कूटकर और उसका छिलका उतार कर चौथाई हिस्सा मोठ मिले पानी मे पका कर गाढा बनाया जाता है। इसमे कभी कभी खाने समय घी या थोई तिली का तेल डालते है।

घाट— मक्का का मोटा दला हुआ आटा पानी मे पका कर गाढा बना लिया जाता है।

दलिया— यह बाजरे के आटे की घाट ही है परन्तु यह पतला होता है। गरीब लोगो को यह पूरी तरह से नसीब नही होता है।

धनवान लोगो मे घी व मिर्च मसालो का ज्यादा प्रयोग होता है। पश्चिमी राजस्थान का घी ताकतवर होता है। यहा की मिठाइया व नमकीन भी बहुत प्रसिद्ध हैं।

पोशाक

यहा के पुरुषो का पहिनावा पगडी, कमरी अगरखी (अगरखा) और धोती है। देहात के ज्यादातर लोग नगे बदन रहते हैं और केवल घुटनो तक मोटे कपडे की धोती या जाघिया पहनते है और सिरपर छोटा सा पोतिया (साफा) रखते हैं। जाट, सीरवी माली गुजर, अहीर आदि अपने पास रेजे (खादी) का एक पछवडा (अगोछा) रखते है। किसानो के सिर्फ तीन कपडे होते हैं (जो मोटे रेजे के होते है)—5 7 हाथ का लम्बा पोतिया (साफा), एक अगरखा और घुटनो तक रेजे की धोती। अब शहर के लोग बण्डी या अगरखे के बदले बिना कफो का कुर्ता पहनने लगे है। महाजन (वैश्य) लोग पेचा, पाग या पगडी जो 18 गज लम्बी और 9 इन्च चौडी बारीक सूत के कपडे की होती है और जिसके किनारे पर जरी का काम किया हुआ होता है बाधते है। इनको भिन्न भिन्न उपजातिया भिन्न-भिन्न तरह से अपन सिर पर बाधती है। सिर पर बाधने की पोशाक मे चोचदार पाग राजस्थान भर मे प्रसिद्ध है। जिसकी विशेषता यह है कि इसके चारा तरफ एक पृथक फीता बान्धा जाता है जिसको सादा होने पर "उपकरणी और सोना चादी के काम से खचित अर्थात् जरीदार होने पर "बालाबन्दी" कहते है। इस समय लोग सिर पर गाढे के पोतिया के बदले साफा (फेंटा) बाधने लग गये है जा साधारणत मलमल का होता है। पुरुषो म शहर के पढे लिखे अपने गले मे रुमाल बाधते है। कोई-कोई टोपी भी लगाने लगे हैं और कई अग्रजी ढग से कोट पतलून या ब्रीचेस तथा अग्रेजी हैट (टोप) भी धारण करने लगे है।

स्त्रियो का पहनावा घाघरा (लहगा, काचली (जा केवल छाती को ढकती है और पीठ की ओर तनिया से बधी रहती है) या अगरखी और ओढनी है। यह ओढनी (लुगडा-दुपट्टा) २॥ गज लम्बी और १॥ गज चौडी होती है, जो मस्तिष्क और शरीर को ढकती है। अब शहरा म रहने वाली स्त्रिया मे साडी का प्रचार बढता जा रहा है। कोई नये ढग के कमीज और ब्लाऊज भी पहन लग गई है।

मुसलमान अधिकतर पायजामा पहनते है। उनको स्त्रिया आधी बाहो का लम्बा कुर्ता या ढीला चोगा जिसे 'तिलक' कहते है पहनती है और कई बुर्का पहिन कर परदानशीन रहती है, परन्तु देहात के मुसलमाना का पहिनावा करीब करीब हिन्दुओ जैसा ही है। उनका रहन सहन व रीति रिवाज हिन्दुओ से मिलता है और वे अधिकाश मे है भी नव-मुस्लिम।

शहर के मुसलमान अचकन भी पहनते हैं। ईद आदि त्योहारों पर इनके कपडे बहुरगी और भडकीले होते हैं।

राजस्थान मे कुछ राजपूतो व वैश्यो को छोडकर पर्दे का रिवाज नही है। राजपूत जागीरदार, जिनके यहा बादिया (डावडिया दरोगने) काम करती है उनके यहा पर्दा होता है किन्तु गरीब और हलवाह कृषक राजपूतो की स्त्रिया कुए या तालाबो मे पानी भर कर लाती है और अपने पुरुषों को रोटी देने खेता मे भी जाती है। पर्दे का रिवाज मुस्लिम राज्य के समय से प्रचलित हुआ है। इससे पहले राजाओ की रानिया भी पर्दा नही करती थी। वे लडाई शिकार और दरबार मे खुले मुँह रहती थी और पुरुषो की भाति अस्त्र-शस्त्र चलाती थी। इसी से कई प्राचीन शिलालेखो में रानियो का युद्ध मे पकडा जाना वर्णित हैं। यही नही, मेवाड राजवंश मे महाराणा सग्रामसिंह द्वितीय के समय (सम्वत् 1668) तक महाराणा अपनी पटरानी के साथ राजसिंहासन पर बैठते थे और पर्दा नही रखा जाता था।

आजकल लोगो मे धन के साथ साथ पर्दे की प्रथा भी बढती जाती है। देखने मे आया है कि ज्यो ही एक आदमी ने चार पैसे कमाये या अच्छा ओहदा पाया कि तुरन्त पर्दे का रोग उसकी जान पर सवार हुआ। उसमे भी मुख्य कर मुसलमान और मुत्सद्दी (राज कर्मचारी) इसमे शीघ्र और अधिकता मे फसते है।

राजस्थान मे पाव मे सोने का कडा या 'लंगर' पहनना प्रतिष्ठा का सबसे बडा चिन्ह है। यह प्रतिष्ठा शासक नरेश से प्रदान होती है। पैर में सोना पहनने की इजाजत देने के राजस्थान मे 'सोना बक्सना" कहते हैं। बिना आज्ञा के लोगो का पैर मे सोना पहनना राजविद्रोह समझा जाता है।

नामकरण संस्कार

पुरुषो के नाम किसी देवी-देवता, तिथि, वार, नक्षत्र, नदी, पशु, पक्षी या बहुमूल्य पदार्थ के नाम पर रखे जाते है। इनके नाम जन्म के समय घर का पुरोहित या ज्योतिषी रखता है। इन नामो के साथ अपने चालू गौत का नाम भी शामिल रहता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शुद्रों के नाम के साथ शर्मा, वर्मा, गुप्ता व दास लगाने की रीति है। राजपूत अपने नाम के अन्त मे "सिंह" शब्द लगाते

हैं।[1] ब्राह्मण के नाम के साथ प्राय देव, शकर व राम जुडा रहता है। वैश्यो के नाम के साथ अक्सर चन्द, मल, दास, लाल जोडे जाते हैं। शूद्रो का पूरा नाम उच्चारण नही किया जाता है, जैसे भैरूलाल का भैरिया, चतुर्भुज का चतुरिया, उदयराम का ऊदा या उदिया पुकारते हैं।

स्त्रियो के नाम भी मनचाहे रखे जाते है, जैसे इमरती जलेबी, पुरी बरफी गटुरी, काली, तोता, गौरी, मैना मूनी, चमेली इत्यादि। राजपूतो मे सोहागन स्त्रिया ससुराल मे "ठकुराणीजी" तथा "लाडीजी" और कवर की स्त्री "कवरानीजी" तथा भवर की 'भवरानीजी' कहलाती है। विधवा स्त्री "माजी" (माता) कहलाती हैं। शासक नरेश की धर्मपत्नि ही केवल राणी या महारानी कहलाती हैं और उसके पुत्र राजकुमार या महाराज कुमार कहलाते है। उदयपुर, जोधपुर बीकानेर और जयपुर मे शासक नरेश के नजदीकी छुटभैया महाराज" कहलाते और जोधपुर मे तीन पीढी के बाद उनको 'ठाकुर' कहते है। जोधपुर, बीकानेर, बासवाडा और अलवर मे शासक नरेश की उपपत्नि(पासवान) के पुत्र तीन पीढी तक 'रावराजा' कहे जाते है और फिर 'भावा'। जयपुर व बून्दी मे ये 'खावास' और 'लालजी' कहलाते हैं।

स्थानो के नाम के साथ पुरा गढ खेडा सर वाड, नगर नेर मेर आदि शब्द रहते है। जैसे जयपुर जसवन्तपुरा, किशनगढ, नवाखेडा, सेजुसर, मारवाड, गगानगर, बीकानेर, अजमेर इत्यादि।

1 सिंह" शब्द का उल्लेख विक्रम की तीसरी शताब्दी मे मिलता है जब ईरान के राजा हिन्दू सभ्यता को अपना कर अपने नाम के साथ 'सिंह' शब्द वीरता का सूचक जोडने लगे थे। पहले पहल गुजरात राजस्थान मालवा काठियावाड, दक्षिण आदि प्रान्तों पर राज करने वाले शक जाति के ईरानी क्षत्रपवंशी प्रतापी राजा रुद्रदामा के द्वितीय पुत्र महाक्षत्रप 'राजा रुद्रसिंह" के समय के शक सवत् 103 से 118 (वि० स० 238 से 253 = ई० सन 181 से सन 196) तक के मिले सिक्कों तथा शक स० 103 (वि० स० 238=ई० सन 181) वैशाख सुदि 5 के उसके शिलालेख मे उसके नाम के साथ सिंह' शब्द लिखा मिलता है। (भावनगर इन्सक्रिपशन्स पृ० 22)। मालवे के परमार क्षत्रिय राजाओं के नाम के अन्त मे 'सिंह" लगाने का शिलालेख विक्रम स० दसवीं० शताब्दी मे मेवाड के गहलोत क्षत्रियों मे 12 वीं शताब्दी मे, कछवाहों 12 वीं शताब्दी के अन्त मे चौहानो मे 13 वीं सदी मे और मारवाड के राठौड़ों मे 17 वीं शताब्दी मे जारी होना पाया जाता है राजपूतो की देखा देखी ही सिक्खों के दसवे गुरु गोविन्दसिंह (वि० स० 1722-65) ने भी 18 वीं शताब्दी मे अपने शिष्यों मे सिंह शब्द का प्रचार किया। पजाब व सीमाप्रान्त के मुसलमान जहा अपने को बड़ा बताने को अपने नाम के साथ 'खान' या 'खा" शब्द जोडते हैं तो सिक्खों ने भी उनकी समानता करते अपने को "सिंह" (सिंह के समान) कहलाना प्रारम्भ किया। यही रिवाज आज तक सिक्ख सम्प्रदाय मे चला आता है और वे लोग चाहे ब्राह्मण हो या हरिजन (अछूत) तब भी 'सरदार" कहलाते हैं और नाम के अन्त मे सिंह" शब्द जोडते हैं।

मेले

राजस्थान मे अधिकतर मेले तीर्थ स्थानो पर कुछ विशेष धार्मिक पर्वों पर भरते हैं। कुछ मेले पशु मेले ही होते हैं। जहा हजारो पशु-गाय, बैल, ऊट, भेस, घोडे, गधे आदि बिक्री के लिये इकट्ठे होते है। उनमे उत्तरी भारत से प्रान्तो के लोग पशु खरीदने आते है जिससे राज्यो को काफी आय होती है। पुष्कर, तिलवाडा, परबतसर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, गोगामेढी (बीकानेर राज्य), के मेले प्रसिद्ध हैं। पुष्कर का मेला कार्तिक मे, तिलवाडा का मेला चैत्र मे, परबतसर का मेला भादवा मे, केशरीयानाथ (धुलेव, मेवाड) का चैत्र मे, चारभुजा (मेवाड) का भादवा मे, माता कुण्डलिनी (रासमी, मेवाड) व कोलायत, (बीकानेर राज्य) का कार्तिक मे, रामदेवरा (पोकरण - जोधपुर) का भादवा मे, महावीरजी (जयपुर राज्य) का चैत्र मे, राणीसती मेला झुंनझुंनु का भादवा मे, सीतला माता मेला, सिल डूंगरी (चाकसु, जयपुर राज्य) चैत्र में, बाणेश्वर (डूंगरपुर) माघ में, बाणगगा (वराट - जयपुर राज्य) वैशाख में, गोगामडी (बीकानेर राज्य) भादवा म, झाम्बेश्वर मेला मुकाम (नोखा-बीकानेर राज्य) फागुन मे व आसोज म, करनी माता का देशनोक (बीकानेर राज्य) चैत्र मे, व आसोज मे, सीताबारी मेला, केलवाडा (कोटा राज्य) मे वैशाख मे भरत है। अजमेर म उर्स का मेला तथा गलियाकोट (डूगरपुर) में, उर्स के मेले में भारत भर के मुसलमान इकट्ठे होते हैं। मण्डोर (जोधपुर राज्य) में वीरपुरी का मेला श्रावण म भरता हैं। इस दिन वीरो की पूजा होती है। मण्डोर म वीरो की साल बनी हुई हैं जिसमें मारवाड के प्रसिद्ध वीरो (मल्लिनाथ पाबूजी, हडभू गोगा, रामदेव) व हिन्दू देवी - देवताओ (राम, कृष्ण, गणेश, भैरु चामुण्डा, ककाली), की वडी वडी मूर्तिया बनी हुई है। इन मेलो पर विभिन्न स्थानो व राज्यो के आदमी इकटठे होते हैं।

त्यौहार

राजस्थान का मुख्य त्यौहार गणगौर है। राजा और रक बालक और बालिकाओ तथा स्त्री और पुरुषो द्वारा बडे उल्लास के साथ मनाया जाता हैं। गणगौर का अर्थ है— गण (शिव) और गौर (पार्वती)। इस त्यौहार का आरम्भ चैत्र माह के पहले दिन से चैत्र सुदि 4 तक चलता है। कु वारी कन्याऍं अच्छा वर पाने के लिये तथा विवाहित स्त्रिया अखण्ड सौभाग्य के लिये गणगौर की पूजा करती है। पूजा के अठारह दिनो तक

कई बालिकायें उपवास करती हैं और उनके ये उपवास वर्षों तक चलते रहते हैं जबतक कि वे उजणा (व्रत की समाप्ति पर दावत) नहीं कर लेती हैं। चैत्र कृष्णा प्रतिपदा को ही स्त्रियां होली की राख में गेहूं या ज्वार उगाती हैं और उसे प्रतिदिन पानी पिलाती हैं। कई स्थानों पर धनी परिवारों द्वारा ईसर (शिव) व गौरी (पार्वती) की लकडी की मूर्तियां बनाई जाकर पूजी जाती हैं।

होली के बाद सातवें दिन कुंवारी कन्याएं कुम्हार के घर जाकर एक मिट्टी का घडा लाती हैं। इस घडे में कई छेद होते हैं। इस घडे में दीपक रख कर लडकियां घुडले का गीत[1] गाती फिरती हैं और पैसे मिठाई घी, तेल आदि इकट्ठा करती हैं। यह कार्यक्रम दस दिन तक चलता है और गणगौर की समाप्ति के दिन इस घडे को फोडकर कुए या तालाब में डाल देती हैं। इकट्ठी की गई मिठाई या इकट्ठे किये गये पैसों से मिठाई लाकर सब मिल कर खाती हैं।

सभी रियासतों में विशेषकर जयपुर जोधपुर बीकानेर कोटा झालावाड और उदयपुर आदि में गणगौर का त्योहार बडे धूमधाम से मनाया जाता है। गणगौर राजकीय जुलूस के साथ निकलती है। बून्दी में गणगौर का त्योहार नहीं मनाया जाता है क्योंकि बून्दी के महाराजा बुद्धसिंह के भाई जोधसिंह सन् 1706 की माच 6 को गणगौर की नाव में ले जाते समय डूब गये थे। तब से राजस्थान में यह प्रसिद्ध हो गया है कि हाडा ले डूबो गणगौर।

श्रावण की तीज का त्योहार राजस्थान में बडे उल्लास से मनाया जाता है। श्रावण मास में वर्षा हो जाने पर चारों ओर हरियाली छा जाती है। हरे रंग में आच्छादित भूमि नव दूल्हन सी लगती है। आकाश

1 घुडले के लिये कहा जाता है कि चैत्र सुदि 3 विक्रम संवत् 1549 (1 माच 1492) को अजमेर के सूबेदार मल्लूखां ने पीपाडनगर की 140 लडकियों का अपहरण कर लिया था जबकि ये गणगौर की पूजा के लिये गांव के बाहर तालाब पर गयी हुई थीं उस समय में मल्लूखां के साथ घुडले खां था। जब मारवाड के राव सातल को यह ज्ञात हुआ तो उसने उनका पीछा कर घुडलेखां को पीपाड के पास कोसाणा में मार डाला। राव सातल भी तभी मारा गया लेकिन लडकियों को बचा लिया गया। मल्लूखां अजमेर चला गया। इस घटना की याद में अब छेदवाला घडा घुडलेखां का प्रतीक होता है और दीपक सातल का विजय दर्शाता है।

से झरती मोती सी बून्दें और पूर्वाई का मतवाला पवन सभी को मदमस्त कर देता है। प्रत्येक घर में और प्रत्येक बाग मे झूले बाध दिये जाते हैं जिन पर स्त्री, पुरुष व बच्चे झूलते है। स्त्रिया सोलह शृगार कर इधर-उधर बागो व खेतो मे घूमती फिरती बडी सुन्दर लगती हैं। तीज के दिन सभी स्त्री-पुरुष व बालक-बालिकाये, नगर या ग्राम के बाहर तालावो या बागो मे इकट्ठे होते हैं। वहा झूलो पर झूलने की होड लग जाती हैं। लोक गीतों के गाने की भी उस दिन बहार रहती है।

चैत्र मास मे ऋतु परिवर्तन-सर्दी समाप्त होकर ग्रीष्म ऋतु आरम्भ होने पर स्वास्थ्य पर प्रभाव पडता है। ऋतु परिवर्तन होने से मनुष्य के शरीर मे रक्त बदल जाता है और इससे चेचक की बिमारी फैलने की आशका हो जाती है। ऐसे समय पर ठण्डा भोजन खाना आवश्यक हो जाता है। इस कारण शीतल सप्तमी को सितला माता का पूजन किया जाता है। *यह त्यौहार चैत्र कृष्णा सप्तमी या अष्टमी को मनाया जाता है।* इस दिन सभी लोग एक दिन पहले पकाया हुआ ठण्डा खाना खाते है। सीतला माता की मूर्ति के रूप मे पूजा की जाती है। मूर्ति को घी, दूध व दही में नहलाया जाता है और प्रार्थना की जाती है कि सीतला के प्रकोप से बच्चो आदि को दूर रखे।

बैशाख शुक्ला तृतीया को आखातीज (अक्षय तृतीया) का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन नई फसल का स्वागत किया जाता है क्योंकि तब तक फसल का नया धान आ जाता है। सभी लोग बडे उत्साह से यह त्यौहार मनाते है। गाव गाव मे मैले लगते है और मिठाईया बटती है। घरो मे नये धान का खीच, गुड आदि के साथ खाते हैं। इस दिन गुड, अफीम आदि से मनुहार की जाती है। काश्तकारो के घरो मे ज्यादातर विवाह भी इसी दिन होते है। इसी दिन अगले वर्ष के लिये सकुन भी लिये जाते है।

रक्षा बन्धन, विजया दशमी व दीपावली के त्यौहार भी बडे धूमधाम से मनाये जाते हैं। विजया दशमी पर रावण व उसके परिवार के पुतले सरकार की ओर से बनवाये जाते है। महाराजा की तब सवारी निकलती है और शाम के समय रावण और उसके परिवार के पुतलो को आतिश-बाजी के साथ जला दिया जाता है।

मुसलमानो के मुख्य त्योहार ईद, शबेरात, मुहर्रम है। मुहर्रम पर कागज व बास का तावूत बनाकर ढोल-ढमाको के साथ शहरो में निकालते हैं और बाद में इन तावूतो को कर्बला मे दफना देते हैं।

स्त्रियों की दशा

राजस्थान मे बालिकाओ का जन्म अच्छा, शुभ व सुखद नही समझा जाता है। कहा भी है—

> पैंडो भलो न कोस को, बेटी भली न एक।
> देणो भलो न बाप को, साहिब राखे टेक ॥

अर्थात्— पैदल चलना तो एक कोस का भी अच्छा नही है और एक कन्या का होना भी ठीक नही है। कर्जा अपने बाप का किया भी भला नही है। ईश्वर इन बातो से बचा कर हमारी इज्जत रखे।

इसी कारण हिन्दुओ और विशेषकर निर्धन राजपूतो मे बाल हत्या का ज्यादा ही प्रचार रहा है। अब तो कानून मे बाल हत्या बन्द करदी गई है फिर भी लुके छीपे बालिकाओ की हत्या गला घोटकर या अफीम पिलाकर करदी जाती है। यदि लडका पैदा होता है तो घर मे प्रसन्नता की लहर फैल जाती है और जोर जोर से थाली या ढोल बजाया जाता है और सन्देशवाहक को पुरुस्कार दिया जाता है।

सामान्यत गर्भवती स्त्री को कई प्रकार के क्रियाक्रम करने पडते हैं। इन क्रियाक्रमो को करने के लिये किसी ब्राह्मण व पण्डित की आवश्यकता नही रहती है। परिवार की स्त्रिया ही यह सस्कार करा देती है। पहला जापा सामान्यतः स्त्री के पीहर मे होता है। जापा दाई करानी है जो ज्यादातर अनपढ तथा अप्रशिक्षित होती है। इस कारण काफी सख्या मे गर्भवती स्त्रिया अनायास ही काल के मुख मे चली जाती है।

जच्चा को कम से कम सात दिन तक अलग कमरे मे रखा जाता है तथा उसे वही खाना दिया जाता है। उसके कपडे भी अलग रखे जाते है। जच्चा के कमरे मे भूत-प्रेत न आ सके इसके लिये वहा पानी व लोहे की वस्तु रखी जाती है। जच्चा को घर की कोई वस्तु छूने नही दी जाती है क्योंकि वह तब तक अस्वच्छ मानी जाती है। बाईस दिन बाद जच्चा को स्नान कराया जाता है और सूर्य का पूजन किया जाता है। तब से वह स्वच्छ मानली

जाती है, और इसके बाद वह घर के कामकाज कर सकती है तथा घर में घूम फिर सकती है। जब बच्चा लगभग सात माह का हो जाता है तब उसे अन्न खिलाया जाता है।

लडकियो का विवाह बहुत कम उमर मे, यहा तक कि पैदा होते ही कर दिया जाता है। बालक बालिकाओ को याद ही नही रहता है कि उनका विवाह कब कैसे व किसके साथ हुआ है। उनके लिये अपनी मर्जी का पति या पत्नि चुनने का प्रश्न ही नही उठता है। इस कारण सामान्यत लोगो के वैवाहिक सम्बन्ध मधुर नही रहते हैं। छोटी उमर म ही विवाह हो जाने के कारण लडकिया जल्दी ही गर्भवती हो जाती है और इस कारण अपना स्वास्थ्य खो बैठती है। कुछ जातिया म बहु-विवाह का ज्यादा ही प्रचार है। राजा महाराजाओ में व सामन्तो मे वैवाहिक स्त्रिया के अलावा उप-पत्नियो, पासवानो आदि को रखन का शौक ज्यादा हा है। *यह उपत्निया व पासवानें विभिन्न जातियो की होती है। दरोगना, गोलियो* आदि को जो उनके विवाह पर दहेज म आती है, अपना कामवासना शान्त करने को उपभोग करना तो उनके लिये मामूली बात है। पिछडी जातिया में पुर्नविवाह होता है लेकिन तथाकथित उच्च जातिया म पुर्नविवाह को प्रथा न होने के कारण उनम विधवाओ की सख्या ज्यादा ही है। उच्च जातियो मे तलाक को प्रथा भी नही है। मुसलमानो म तलाक की प्रथा है लेकिन स्त्रियो को इसकी सुविधा नही है।

स्त्रियो में पर्दा प्रथा का ज्यादा प्रचलन है। हिन्दू स्त्रियो से ज्यादा मुस्लिम स्त्रियो म पर्दा सख्ती से रखा जाता है। वे बुरका पहनकर ही बाहर निकल सकती हैं। हिन्दुओ म उच्च वर्गो के लोगो म पर्दा ज्यादा है। ये पर्दे के बिना बाहर निकलती हो नही है। जो भी व्यक्ति कुछ अच्छे ओहदे पर हो जाता है या कुछ धनवान हो जाता है तो अपनी इज्जत बतलाने को अपनी स्त्रियो का पर्दा सख्त कर लेता है। बाल विवाह तथा पर्दा प्रथा के कारण कम ही स्त्रिया उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकती है। जो कुछ शिक्षा प्राप्त करती हैं, वे ज्यादातर धनी व सरकारी कर्मचारियो की पुत्रिया ही होती हैं व प्राथमिक पाठशालाओ चटशालाओ या मकतबो म ही लडको के साथ पढकर ही प्राप्त करती है। ज्यादा उमर होते ही उन्हे घर के काम काज में लगा दिया जाता है। इस प्रकार जल्दो उमर म ही पर्दे म रहने के कारण उनका स्वास्थ्य ठीक नही रहता है। शहर के गरीब वर्ग तथा गावो में किसान व गरीब महिलाओ में पर्दा नाम मात्र का होता है। ये मजदूरी व खेतो में काम बिना पर्दा के करती रहती है।

स्त्रियो को अच्छे कपडे व गहने पहनने का ज्यादा ही शौक है। पहनावा उनकी आयु, सामाजिक स्थिति, तथा आर्थिक स्थिति के अनुसार अलग-अलग होता है। ऊँचे वर्गों की स्त्रिया महगे व अच्छे कपडे पहनती है लकिन गरीब वर्ग की स्त्रिया सादे कपडे ही पहननी है। औरतो का मुख्य पहनावा—लहघा या घाघरा, चोली, दुपट्टा या ओढनी होता है। मुस्लिम स्त्रियो का भी लगभग यही पहनावा है लेकिन वे बुरका पहन कर बाहर निकलती है। हिन्दू स्त्रिया घू घट निकाल कर बाहर निकलती है। सौन्दर्य प्रसाधनो का भी काफी प्रचलन है। हाथो व पैरो म मेहदी लगाने व दाता को मिस्सी से रगने का स्त्रियों को विशेष शौक होता है। हिन्दू स्त्रिया सिर के बालो के बीच माग मे सिन्दुर भरती है लेकिन मुस्लीम स्त्रिया ऐसा नही करती है। हिन्दू स्त्रिया मस्तिष्क पर बिन्दी भी लगाती है। सिर से पैर तक विभिन्न प्रकार के गहने पहनने का सभी वर्गों की स्त्रियो को शौक है। ये गहने सोने, चान्दी व पीतल के होते हैं। हिन्दू स्त्रियों मे बाहा मे चूडा पहनने का विशेष रिवाज है।

हिन्दू विधवाओ की हालत बडी खराब होती है। उनका समाज मे कोई आदर नही करता है। तथाकथित उच्च वर्ण के हिन्दुओ मे विधवा के पुर्नविवाह का कोई प्रश्न ही नही उठता है। यह प्रथा मध्यकाल मे प्रारम्भ हुई। अन्यथा प्राचीनकाल मे विधवा का पुनर्विवाह होता था। मनु सहिता द्वारा ही विधवा विवाह पर रोक लगायी गई लेकिन उसम भी यह लिखा है कि कुछ विशेष परिस्थितियो मे विधवा स्त्री पुर्नविवाह कर सकती है। मध्यकाल मे लोग रूढीवादी हो गये और विधवा विवाह को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। परिवार के लिये यह अपमानजनक था कि विधवा पुर्नविवाह कर। इनके विपरित यदि विधवा मृतक पति के साथ सती हो जाती थी तो इसमे अपनी बडी इज्जत समझते थे। इस कारण मध्यकाल मे जबरदस्ती विधवाओ को पति के शव के साथ जलाया जाने लगा। पिछली शताब्दी मे ही कानून द्वारा सती की प्रथा को समाप्त की गयी है। यों विधवा को घर मे बडा अपमानजनक परिस्थितियो मे जीवन बिताना पडता है। घर मे किसी भी जन्म, विवाह आदि शुभ कार्यों पर उसकी उपस्थिति अच्छी नही समझी जाती है। इस कारण वह उनमे भाग नही ले सकती है। उसको गहने पहने या श्रृंगार करने की मनाही होती है। उसे काले या सफेद कपडे पहनने पडते है व तेल तक नही लगा सकती है और वह खाट पर सो तक नही सकती है। इन कारणो से

विधवायें या तो शीघ्र अस्वस्थ होकर ससार छोड देती है या घर से भाग जाती हैं। मुस्लिम विधवा की इतनी खराब दशा नही होती है। वह पुनर्विवाह कर सकती है लेकिन पति की मृत्यु से कम से कम सवा चार महिना बाद।

इस प्रकार राजस्थान मे स्त्रियो की स्थिति, भारत की अन्य प्रातो की भाति अच्छी नही है। उनकी हालत को सुधारने की काफी आवश्यकता है।

अन्धविश्वास एवम् जादू टोने

प्रकृति के प्रकोपो व देवी घटनाओ को देखकर लोगो को विश्वास होने लगा कि किसी अद्भुत शक्ति का इनके पीछे हाथ है। इस कारण उनसे बचने के लिये व ऐसी दुर्घटनाय न होने देने के लिये उन दैविय शक्तियो को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे और इस प्रकार लोगो का धर्म-कर्म मे ध्यान जाने लगा। सामान्यत चमत्कार व धर्म एक दूसरे मे मिले हुए है। लोगो का दोनो मे विश्वास प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। ऋग्वेद व अथर्ववेद में कई मत्र इनके विषय मे मिलते है। शिव, भैरव भवानी, ककाली, हनुमान, पाबू, तेजा, गोगा, रामदेव आदि जादू टोने के लिये माने हुए देवता हैं। इनकी पूजा के विशेष दिन है। यथा शनिवार रविवार, अमावश्या, सप्तमी आदि। गावो मे जादू टोना करने वाली जातिया, भील मीणा, कराड, गूजर आदि है। इनको भोपा कहा जाता है। ये लोग इन देवी-देवताओ व लोक देवताओ के पुजारी होते है और मत्रोच्चारण कर देवी देवताओ आदि को प्रसन्न करते है। इन देवी-देवताओ व भोपो को भूत प्रेतों, चूडेलो आदि को नियत्रण मे रखने व जादू टोना करने मे प्रवीण माना जाता है। देवी-देवताओ को प्रसन्न करने के लिये भोपे आग लगाकर व दीपक जलाकर ज्योत करते है। लोग कुछ धान देवी देवताओ के सामने रखते है और उनकी यश-गाथाय गाते है व ढोल, भाभा आदि बजाते है। तब ही सम्बन्धित व्यक्ति का सकट दूर करने की प्रार्थना की जाती है। भोपा के अलावा नाथ भी जादू टोना करते है। ये लोग उपवास कर तथा नवरात्रो में पूजा पाठ कर यह विद्या ग्रहण करते हैं। कुछ श्मसान भूमि मे जाकर इसमे सिद्धी प्राप्त करते है। नाथ अपने ईष्ट देवता को प्रसन्न कर सिद्धी प्राप्त करते हैं। भोपे बिमारियो व सकट के दूर करते है लेकिन नाथ मरण व उच्चटन मत्रो में प्रवीण होते हैं। जोगनिया भी भूत - प्रेतो को दूर करती है। वे भवानी के लाल कपडे पहन गाव मे फिरती रहती हैं।

जादू टोने दो प्रकार के होते हैं —(1) रक्षात्मक व (2) आक्रमक रक्षात्मक जादू मे लोगो की बिमारिया, (हिस्टीरिया, मलेरिया, सिरदर्द आदि) दूर की जाती है। साँप, बिच्छु आदि के काटे व्यक्ति को ठीक किया जाता है। किसी के सकट व कष्ट को दूर किया जाता है आदि आदि आक्रमक जादू मे शत्रु का नाश, बीमारो, आफत, अकाल लाकर या अप्राकृतिक मृत्यु लाकर किया जाता है।

रक्षात्मक जादू-टोने— बीमारियो को दूर करने के लिये भोपा नीम की डालो या मोर पख लेकर बीमार के सिरपर घूमाकर भूतप्रेत को भगाने हेतु मत्र बोलता है व आग मे मिरचें आदि भी डालता है और उस व्यक्ति के सामने फैंकता है। कोई कोई देवी-देवता का डोरा भी बीमार के हाथ पर बाधते है, ताकि बीमारी दूर हो जावे। मत्रा हुआ पानी पिला कर या पान आदि खिला कर भी बीमारी दूर की जाती है।

व्यापारी लोग अपने व्यापार की वृद्धि के लिये दीपावली, होली आदि पर पूजा पाठ करते हैं और दवात-कलम व बहियो की पूजा कर उनपर स्वस्तिक का चिन्ह लगाते है और बहियो पर 'शुभ-लाभ" लिखते हैं। वे लोग प्रतिदिन दूकान पर जाने के पहले शकुन लेते है। जब तक शकुन अच्छे नही होते हैं वे घर से रवाना नही होते है। इसी प्रकार यात्रा आदि पर जाने के पहले भी शकुन लेत हैं। कुछ विशेष दिनो पर ही यात्रा व व्यवहार किये जाते हैं।

काश्तकार अच्छी फसल लेने के लिये शकुन लेते है। इसके लिये ज्वार आदि को हल्दी से रग कर मकान के बाहर लगाया जाता है। आगामी वर्ष मे भी अच्छी फसल हो इसके लिये माजर-माता की पूजा की जाती है। टिड्डी दल को भगाने के लिये नाथ लोग भैरव या हनुमान की पूजा कर मत्र बोलते है।

नजर लगाना भी राजस्थान मे बहुत माना जाता है। इस कारण सुन्दर बच्चो के काली टिकी, गाल या मस्तिष्क पर लगायी जाती है। दूल्हा व दुल्हन को जल्दी ही नजर लगाने का भ्रम लोगो को रहता है। इस कारण दुल्हन के दुपट्टे मे निम्बु और दूल्हे के कमर मे तलवार या कटार बान्धी जाती है। इसी प्रकार दूल्हे व दूल्हन को कलाई मे कागन-डोरा बान्धा जाता है। नया मकान बनाने या नया गहना पहनने पर भी कोई न कोई काली वस्तु या डोरा लगाया जाता है। ताकि किसी की नजर न लगे।

आक्रमक जादू टोने— कुछ व्यक्ति अपने शत्रु से बदला लेने के लिये उस पर आक्रमक जादू टोने कराते है। इसके लिये भोपे मारण मन्त्रों का प्रयोग करते हैं। शत्रु के किसी कपडे या उसके द्वारा प्रयोग की जाने वाली वस्तु पर मन्त्र बोल कर उसे दे दी जाती है। ताकि शत्रु का अनिष्ट हो जावे। इसी प्रकार शत्रु पर मूठ भी फेंकने के लिये चनों का प्रयोग किया जाता है। सात या इक्कीस चनों पर मन्त्र बोल कर शत्रु की ओर फेंके जाते है और इससे शत्रु समाप्त हो जाने तक की आशा की जाती है। इसी प्रकार शत्रु का आटे या मिट्टी का पुतला बनाकर व उस पर मारण मन्त्र बोलकर पुतले के अंगो को तोडा मरोडा जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ऐसा करने से शत्रु को काफी कष्ट होता है और वह मर तक सकता है। इस कार्यवाही से यह भी अनुमान किया जाता है कि यदि पुतलों पर मन्त्र करने वाला व्यक्ति कोई गलती कर देता है तो उस व्यक्ति पर उल्टा असर भी हो सकता है।

कई व्यापारी धान महंगा करने के लिये अकाल की स्थिति पैदा कर देने का प्रयत्न करते हैं। इस कारण वर्षा नहीं होने देने के लिये घडा को पानी से भरकर जमीन मे गाड देते हैं। यह घडे लाल कपडे मे ढके रहते हैं। घडा पर प्रतिदिन मन्त्र पढे जाते है। यह अनुमान किया जाता है कि इससे वर्षा रुक जावेगी और धान महंगा बिकेगा।

कई पुरुष और स्त्रियां किसी अन्य स्त्री या पुरुष को वश मे करने के लिये वशीकरण मन्त्रों का प्रयोग करते है। वशीकरण मन्त्र पान आदि पर पढकर वश मे किये जानेवाले व्यक्ति को खिला दिया जाता है। इससे पान खानेवाला पुरुष या स्त्री उस पुरुष या स्त्री का आकर्षित हो जाती है। इसी प्रकार दो प्रेमियों या मित्रों के बीच भेद लाने को मन्त्र पढे जाते हैं।

भोपे भाव मे आकर भी लोगों के सकट दूर करते हैं। भाव मे आने के लिये भोपे देवता के सम्मुख दीपक जला कर ज्योत करते है। देवता की मूर्ति पर सिंदुर लगाया जाता है और ज्योत को तेज किया जाता है। ढोल व झांझ जोर जोर से बजाया जाता है। भोपा मूर्ति के सामने नाचता है व अपना शरीर हिलाने लगता है। तब लोग उससे अपने सकटो का दूर करने के उपाय पूछते हैं और वह भाव मे ही उत्तर देता रहता है। भाव मे पूछने पर वह भविष्य मे होने वाली वर्षा फसल बिमारियों आदि के बारे मे भी बतलाता है। यह भाव लगभग एक घण्टे तक रहता है। बाद मे वह सामान्य स्थिति मे आ जाता है।

कुछ लोग साँप व बिच्छु के विष को दूर करते है। इन लोगो को तेजा का इष्ट होता है। तेजा के थान प्रत्येक ग्राम मे मिलते है जहा भादवा शुक्ला पचमी को पूजा की जाती है। जब कभी किसी को विषधर काट लेता है तो तेजा के नाम का डोरा बान्धा जाता है और ज्योत जलाई जाती है। ढोल बजाकर लोगो को उत्तेजित किया जाता है और सब नाचने लगते है। साप के जहर को चूसा भी जाता है। इससे बीमार अच्छा हो जाता है।

गाव मे डाकनियो से भी बहुत डरा जाता है। किसी भी बदसूरत बूढी औरत को डाकन समझ लिया जाता है। लोगो का अनुमान है कि डाकनिया बच्चो को खा जाती है और कमजोर स्त्रियो के बीमारी लगा देती है। यह भी माना जाता है कि वे श्मसान भूमि मे रहती है और वहा छोटे बच्चो की लाशो को भूमि से निकाल कर उन्हे खा जाती है। रात को श्मसान भूमि मे ये डाकनिया नाचती, गाती फिरती है। पिछली शताब्दी तक इन तथाकथित डाकनियो को मारडाला जाता था या जला दिया जाता था। अब कानून से उन्हे मारना या जलाना बन्द कर दिया गया है फिर भी लोग डाकनियो मे विश्वास करते है और बतलाते है कि वे लोगो का अनिष्ट करती फिरती है।

भूत, भूतनियो, जिनो आदि मे लोग भी विश्वास करते है। उनके लिये कहा जाता है कि वे एकान्त स्थानो खण्डहरो, पुरानी खेजडियो आदि पर रहती है और जब कभी किसी व्यक्ति को, विशेष कर बच्चो औरतो व कमजोर पुरुषो के लग जाते है तो उसे नाना प्रकार से कष्ट देते है और यहा तक कि पागल कर देते हैं। इनको भी भगाने हेतु भोपे झाडे झपटे करते हैं।

इस प्रकार राजस्थान की अशिक्षित जनता बिना किसी तर्क के जादू टोनो मे विश्वास करती है और भोपो, नाथो, जोगनियो आदि के चक्कर मे फसी रहती है। ज्यादातर मामलो मे मक्ट या बिमारा टलती नही है लेकिन इसके लिये ये चमत्कारी लोग अनेक कारण बतला देते हैं। इस प्रकार अन्धविश्वास चलता रहता है और जादू टोना करने वाले उनके कारण गुलछर्रे उडाते रहते है।

पेशे

राजस्थान मे सन् 1931 की जनसख्या के अनुसार 38,54,111 पुरुष तथा 20,81,152 स्त्रिये काम करने वाली तथा काम पर निर्भर है। इनका ब्यौरा इस प्रकार है—

धन्धा	काम करने वालो की सख्या
1. कृषि एव पशु पालन	42,57,801
2 खनिज कार्य	7,980
3 उद्योग	6,81,198
4 परिवहन	51,104
5. व्यापार	2,97,785
6 जनवल	56 045
7 प्रशासन	65,167
8. जन-उपयोगी धन्धे	1,54 609
9 अपनी आमदनी पर निर्भर	5,771
10 घरेलू कार्य	86,786
11 अवर्णित	1,84,638
12 अनुत्पादित	76,379

खनिजकार्य मे सबसे ज्यादा लोग धोलपुर, कोटा व मारवाड के हैं। इन राज्यो मे मुख्य काम पत्थरो की खान का है। मारवाड मे नमक उद्योग मे भी काफी लोग काम करते है।

कपडा उद्योग पर 1,63,443 चमडा उद्योगो पर 31,418 लकडी, मिट्टी के बर्तन बनाने, कपडे व प्रसाधन उद्योग व भवन निर्माण सम्बन्धी उद्योगो पर क्रमश 39 418 व 58,448 व 65,793 व 1,59,267, 53,190 लोग काम करते है।

परिवहन के कार्य मे कुल 51,104 व्यक्ति लगे हुए है। जिनमे से रेल्वे सेवा मे 27,218 है। सडक परिवहन मे 27,218 व्यक्ति काम करते है।

व्यापार मे 2,97,785 व्यक्ति लगे हुए है। यो व्यापार व उद्योग एक दूसरे के आश्रित है। यदि एक व्यक्ति चमडे के उद्योग में लगा हुआ है तो वह उसको बेचता भी है। इस प्रकार वही व्यक्ति व्यापार भी करता है। यो

लेन देन का काम 35,329 कपडे का व्यापार, 16,325 चमडे का व्यापार, 3,154 तथा लकडी का व्यापार 1604 व्यक्ति करते है। धान के व्यापार में 1,46,893 व्यक्ति लगे हुए है। ईंधन का व्यापार 23,910 व्यक्ति करते है।

सार्वजनिक प्रशासन मे कुल 6,65 167 व्यक्ति लगे है। सेना मे 28,440 व पुलिस दल मे 27 605 व्यक्ति है। जन उपयोगी धन्धों मे से धार्मिक कार्यों मे 1,06,297, वकालत मे 2 140 स्वास्थ्य सेवाओ मे 8,333 तथा शिक्षा मे 6,318 व्यक्ति लगे हुए हैं। स्वास्थ्य सेवाओ मे दाईओ की सख्या 4,677 भी सम्मिलित है। घरेलू सेवाओ मे 86,786 व्यक्ति लगे हुए है।

सन् 1931 मे राजस्थान मे पढे लिखो (मेट्रिक पास) मे केवल 128 बेकार थे लेकिन यह सख्या बराबर बढती ही जा रही है। इस कारण पढे-लिखो मे असतोष फैलना जा रहा है।

उद्योग

राजस्थान उद्योग के क्षेत्र मे काफी पिछडा हुआ है। पानी बिजली, यातायात आदि की कमी के कारण यहां उद्योग कम ही खुल पाये है। आर्थिक साधनो की कमी तथा शासको की उद्योगो मे रुचि की कमी भी यहां उद्योगिको को आकर्षित नही कर सकी है। राजस्थान मे केवल ब्यावर मे ही सूती मिले है।[1] सिमेन्ट के लिये यहां केवल एक कारखाना लाखेरी (बून्दी) मे है।[2] नमक साभर, डीडवाना व पचपदरा मे बनता है। केवल राजस्थान की ही झीलो मे नमक बनता है।[3] जयपुर मे बिडला बन्धुओ ने बालबेरिंग का कारखाना लगाया है। राजस्थान मे अभी उद्योगो की काफी कमी है। यहां के कृषि पदार्थो, खनिज पदार्थो आदि मे कई

1. राजस्थान मे अब ब्यावर के अलावा पाली भीलवाड़ा, किशनगढ विजय नगर (अजमेर), जयपुर, गगानगर, भवानीमंडी कोटा व उदयपुर मे सूती मिलें हैं। सबसे बडी मिल पाली की उम्मेद मिल हैं। सभी मिलों मे लगभग सात करोड मीटर कपड़ा तैयार होता है।

2. अभी सीमेन्ट के कारखाने लाखेरी के अलावा सवाई माधोपुर, चित्तौड व उदयपुर मे हैं। इनमे लगभग 14 लाख टन सिमेन्ट प्रति वर्ष तैयार होती है।

3 भारत के कुल नमक उत्पादन का 10 प्रतिशत राजस्थान से प्राप्त होता है। यहां लगभग 5 लाख टन नमक का उत्पादन होता है।

उद्योग चालू हो सकते है। इनके लिये न केवल धन, तकनिकी शिक्षा वलिक नरेशों द्वारा सहायता दी जानी आवश्यक है।[1]

राजस्थान मे कपडा, चमडा, लकडी, रसायनो, खाद्यान्नो, भवन निर्माण सामग्री आदि पर आधारित उद्योगो के पनपने की काफी गुंजाईश है। अभी जो भी उद्योग यहा है वे घरेलू उद्योग या लघु उद्योग कहे जा सकते हैं। ये उद्योग ज्यादातर जातिवार है यथा, बलाई व कोली आदि कपडा उद्योग मे, गडरिया, जोगी, खटीक, जटिया आदि बकरी या ऊँट के बालो के थैले, रस्सिये आदि के उद्योग मे, डबगर ऊँट के चमडे के कुप्पे बनाने के उद्योग मे। पिछले कुछ वर्षो से स्वदेशी कपडे बनाने की ओर ध्यान दिया जाने लगा है। इसका कारण किसी सीमा तक अंग्रेजी प्रान्तों में स्वदेशी आन्दोलन का चलना है। खादी केन्द्र बडे बडे नगरो एवम् कस्बो मे खुलने लगे है। यो जोधपुर के प्रधान मन्त्री सर प्रतापसिंह तथा बीकानेर नरेश महाराजा गगासिह ने भी स्वदेशी कपडो को काफी प्रोत्साहन दिया है। फिर भी मिलो का कपडा सस्ता व टिकाऊ होने के कारण ज्यादा पहना जाता है। जब तक करघो को सुधारा नही जावेगा, खादी के कपडों का लोकप्रिय होना कठिन है।

व्यापार

भारत के बडे बडे व्यापारिक केन्द्रों— बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, अहमदाबाद आदि पर राजस्थानी व्यापारी बहुतायत से मिलते हैं। ये व्यापारी राजस्थान मे ही बाहर गये है। उनके यहा से जाने का मुख्य कारण यहा व्यापार की कमी तथा आवश्यक सुविधाये नहीं मिलना है। यहा प्रत्येक नगर, कस्बे व गाव म लोगो की आवश्यकतानुसार वस्तुएं मिल जाती है। प्रत्येक नगर व कस्बे मे व्यापारियो के लिये अलग अलग बाजार है। जो वहा की जनसख्या के अनुसार छोटा व बडा होता है। कई गावों (लगभग 200) मे निश्चित दिनो पर हाट लगते है जिनमे प्रति हाट

1 राजस्थान मे चीनी के तीन कारखाने भोपाल सागर (चित्तौडगढ जिला), गगानगर व केशोरायपाटन (बून्दी) मे हैं। इनसे प्रतिवर्ष 18 लाख टन चीनी का उत्पादन होता है। इनके अलावा तावे व एल्यूमिनियम के तार, बिजली के मोटर बनाने, वनस्पति घी तैयार करने, ऊनी कपडा तैयार करने हड्डी पीसने, रेल के वेगन बनाने, जिंक, सीसा व तांबा तैयार करने, सिलाई के यन्त्र बनाने, तेल निकालने के कारखाने भी खुल गये हैं। कोटा में तो पचासों कारखाने खुल गये हैं और वह अब "राजस्थान का कानपुर" बन गया है।

औसतन 60 दुकाने लगती है । उस दिन उस गाव या आस पास के गावो के लोग अपनी अपनी अपनी आवश्यकता का सामान खरीद ले जाते है । उस हाट मे कपडा, खाद्य पदार्थ, साग व सब्जी, वर्तन, चुडिया आदि वस्तुए मिलती है । इन हाटो को लगाने वाले राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त ठेकेदार होते हैं जो राज्य का निर्धारित रकम देकर मनमाने ढग से किराया हाट मे आने वाले व्यापारियो से वसूल करते है ।

राजस्थान में कई पशु मेले भरते है जिसम हजारो पशु बिकते है । इस कारण पशु पालन पर लोग बहुत ध्यान देते है । पशु खरीदने के लिये व्यापारी काफी मात्रा मे आस पास के राज्यों व प्रान्तो से आते है ।[1]

---

1 राजस्थान मे भारत के कुल पशुधन का 7 5 प्रतिशत भाग पाया जाता है । उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के बाद राजस्थान मे ही पशुधन ज्यादा है । भेडो व बकरियों का प्रतिशत क्रमश 21 व 16 है ।

राजस्थान की निम्न पशुओं की नस्ले भारत भर मे प्रसिद्ध है—

(1) गायें मालानी साचौर व मालवी
(2) भैंस - मुर्रा
(3) बैल नागौरी
(4) ऊट जसलमेरी
(5) घोडा मालानी
(6) बकरी - बाडमेरी
(7) भेंड - नाली, मगरा चोकला (शेखावटी) मारवाडी, जसलमेरी मालपुरा सोनाडी, पूगल व बागडी

ऊटो के लिये राजस्थान का एक विभाग है । यहा का सबसे महत्वपूर्ण पशु ऊट है जो सवारी, समान ढोन, पानी खींचने खेत जोतने आदि के काम आता है । ऊट के बालों के नमदें व रस्सिया बनाई जाती है । ऊट एक घण्टे मे 8 मील तक जा सकता है । ऊट सेना मे भी काम आते हैं । बीकानेर का गंगा रसाला भारत भर म प्रसिद्ध है ।

भेडो की ऊन भारत भर मे प्रसिद्ध है । लगभग तीन करोड पौण्ड ऊन प्रति वर्ष वेची जाती है । ऊन की प्रमुख मण्डिया ब्यावर पाली, बीकानेर व केकडी है । राजस्थान में लगभग दो करोड पौण्ड ऊन निर्यात की जाती है । लगभग 15 लाख भेडे मास के लिये भी निर्यात की जाती है । भेडो व ऊन से राजस्थान लगभग 7 करोड रुपये प्रति वर्ष मिलते हैं ।

व्यापारियों को यहा सबसे ज्यादा असुविधा निर्यात या आयात की जाने वाली वस्तुओं पर लगने वाली जकात है। प्रत्येक राज्य द्वारा अलग अलग दरो से यह वसूल की जाती है। यहा के लोगो का राजस्थान से बाहर जाकर उद्योग लगाने व व्यापार करने का यही मुख्य कारण है।

राजस्थान के आर्थिक दृष्टी से सम्पन्न लोग महाराजा, सामन्त व कुछ व्यापारी है। ये व्यापारियो को प्रोत्साहन दे सकते हैं लेकिन इनका ज्यादा धन अग्रेजी प्रान्तो के नगरो मे विलास को वस्तुऐं खरीदने में ही लग जाता है। उद्योग में भी ये लोग धन लगाते है तो वह भी अग्रजी प्रान्तो में ही। अत यहा के उद्योग व व्यापार पनप नही रहे हैं। पढे लिखो मे भी इसी कारण बेकारी फैलती जा रही है। इनका असतोष कहा ले जायेगा, यह विचारणीय है।

परिवहन

प्रत्येक राज्य की उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि वहाँ आवागमन के साधन अच्छे हों। इसस वहां के लोगा का सामाजिक व आर्थिक स्थिति अच्छी हो सकती है लेकिन राजस्थान मे आवागमन के साधनो की बडी कमी है। आवागमन के मुख्य साधन है – रेल व सडक।

राजस्थान मे दो प्रकार की— बडी और छोटी रेल की पटरियां है। बडे नाप की लाईनो मे बी० बी० एण्ड सी० आई० और जी० आई० पी० रेल्वे है जो अग्रेज सरकार की छत्रछाया मे गोरे व्यापारियो द्वारा बनाई जाती है। बॉम्बे, बडोदा एण्ड सेन्ट्रल इण्डिया रेल्वे की बडी लाइन रतलाम मे होकर दिल्ली को गई है। ग्रट इण्डियन पेनिनसुला रेल्वे की एक शाखा ग्वालियर से धौलपुर हाती हुई आगरा को गई है। जैसलमेर, बांसवाडा व डूंगरपुर मे कोई रेल मार्ग नही है।

बी० बी० एण्ड सी० आई० रेल्वे की एक छोटी लाईन आबू के पास राजस्थान म प्रवेश कर अजमेर, जयपुर, बांदीकुई, अलवर होती हुई दिल्ली गई है। ऐसे ही अजमेर से एक शाखा चित्तौडगढ होती हुई रतलाम (मालवा) की ओर गई है। इसी प्रकार कई छोटी लाईने राज्यो ने अपने यहां खोल रखी हैं जिनमे जोधपुर रेल्वे, बीकानेर रेल्वे, जयपुर रेल्वे, उदयपुर रेल्वे और धौलपुर रेल्वे है। राजस्थान मे रेल्वे की कुल लम्बाई 2995 मील हैं। जोधपुर रेल्वे का एक तिहाई भाग सिंध मे है।

इन रेलो का यह प्रभाव पडा है कि पुराने जमाने मे अकाल पडते थे, उनका भयकर स्वरूप अब देखने मे नही आता है। अब अकाल होने पर भी वस्तुओ की कीमत बराबर रहती है और एक स्थान का माल दूसरे स्थान पर पहुँचाने मे किसानो को लाभ होता है। व्यापार भी इनके कारण काफी ज्यादा होने लगा है लेकिन राजस्थान प्रात का क्षेत्रफल देखते रेल लाईनें बहुत ही कम हैं।[1]

राजस्थान मे सडको की भी बडी कमी है। ज्यादातर सडके रेल्वे के समानान्तर बनी है। सडको मे मुख्य ग्राड ट्रक रोड है जो दिल्ली से चलकर अलवर, जयपुर, अजमेर, किशनगढ, जोधपुर, सिरोही होती हुई अहमदाबाद तक गई है। दूसरी सडक अजमेर से नीमच छावनी गई है। इसी प्रकार नसीराबाद से देवली को पक्की सडक गई है। आबूरोड (खराडी) से आबू (माउण्ट आबू) को भी पक्की सडक बनी है। पक्की सडके जयपुर मे 485, भरतपुर मे 112, कोटा मे 260, उदयपुर मे 135, अलवर मे 170 और जोधपुर मे 300 मील है। इनके सिवाय प्रत्येक रियासत मे कच्ची सडके भी है। सामान्यत सडके रियासतो की राजधानियो के ग्राम

---

1 राजस्थान के निर्माण के बाद सभी रेल मार्ग भारत सरकार के नियत्रण मे चले गये है और इस कारण रेल मार्गो का नाम भी बदल गया है। अब जोधपुर ■ बीकानेर राज्यो के रेल मार्ग उत्तर रेल्वे, जयपुर व उदयपुर के रेल मार्ग पश्चिमी रेल्वे मे विलीन हो गये हैं। उत्तर रेल्वे की कुल लम्बाई 328·5 किलो मीटर है जो भूतपूर्व जोधपुर व बीकानेर राज्यो के जिलों मे होकर जाती है। पश्चिमीरेल्वे की लम्बाई 2 523 5 किलो मीटर हैं जो जयपुर अलवर सवाई माधोपुर अजमेर, चित्तौडगढ, उदयपुर, डूंगरपुर, सिरोही व भरतपुर जिलो मे होकर जाती है। पश्चिमी रेल्वे का 272 किलो मीटर ब्रोडगेज रेल मार्ग भरतपुर, सवाई माधोपुर व कोटा जिलों मे होकर निकलता है। मध्य रेल्वे की ब्रोडगेज रेल पटरी धौलपुर व भरतपुर होकर निकलती है। इनकी लम्बाई 133 5 किलो मीटर हैं। गगानगर से हिन्दूमल कोट (पजाब) तक 27 6 किलो मीटर लम्बा रेल मार्ग जनवरी 1971 से आरम्भ हो गया है। उदयपुर से अहमदाबाद डूंगरपुर होकर 185 किलो मीटर रेल मार्ग नवम्बर 1965 से आरभ हो गया है। पोकरण से जैसलमेर रेल मार्ग 1967 से चालू हो गया है।

पास बनी हुई हैं।[1] यहा तक की एक रियासत के प्रमुख नगर भी सडकों से सम्बन्धित नही हैं।[2]

राजस्थान में डाकखाने और तारघर अंग्रेजी सरकार द्वारा प्राय प्रत्येक महत्वपूर्ण कस्बे व शहर में खोले गये है। जयपुर राज्य में डाकखानो का प्रवन्ध राज्य की ओर से हैं। अंग्रेजी सरकार के डाकखाने राजस्थान में कुल 586 हैं।

भूमि और पैदावार

राजस्थान का ज्यादातर भाग रेतीला है। केवल पूर्वी व दक्षिणी भाग मे काली तथा उपजाऊ भूमि है। आडावला पहाड के पश्चिमी भागो मे, सिवाय कुछ विशेष स्थानो के, एक फसल खरीफ (सियालू) की होती है। रवी (उनालू) फसल कुए, तालाब या नहरो की सिंचाई से होती है। इस भाग मे कम से कम पानी 75 फुट गहरा खोदने पर मिलता है। इसलिये कृषि हेतु इसकी सिंचाई मे लाभ नही हो सकता है। ज्यादातर लोग खरीफ (सियालू) फसल और वर्षा पर ही निर्भर रहते हैं।[3]

---

1 राजस्थान मे अब सडकों की कुल लम्बाई लगभग 3300 किलो मीटर है। अब सभी जिलो से उपजिले व तहसीले सडकों से जुड गई है तथा 5000 से अधिक जनसख्या वाले गावों को सडक से जोड दिया गया है। अभी भी सडकों की स्थिति पूर्ण सतोषजनक नहीं हैं। सड़कों को बढाने की काफी आवश्यकता है।

2 शीघ्र परिवहन के लिये वायु मार्गों का होना अत्यन्त आवश्यक है। इस समय जयपुर, जोधपुर, उदयपुर व कोटा को हवाई सेवायें उपलब्ध हैं।

3. राजस्थान के कुल क्षत्र के केवल 39 प्रतिशत भाग पर खेती होती है। कुल बोये गये क्षेत्र मे से केवल बीस प्रतिशत मे सिचाई सुविधायें उपलब्ध है। अन्यथा शेष 80 प्रतिशत क्षत्र केवल वर्षा पर निर्भर है। वर्षा का औसत झालावाड जिले मे 100 सेन्टीमीटर व जैसलमेर मे केवल 10 सेन्टीमीटर है। कईबार तो कई गावों में एक सेन्टीमीटर भी वर्षा नहीं होती है। अच्छी खेती के लिये सामान्यत 3 वर्षा कुछ दिनों के अन्तर से होना आवश्यक होता है। लेकिन कईबार होता यह कि 1 या 2 बार ही वर्षा होकर रह जाती है। कईबार फसले अच्छी होती है तो उन्हें चूहे, पक्षी या कीडे खा जाते हैं। इस प्रकार काश्तकारों को कभी भी पूर्ण विश्वास नहीं होता है कि, उनकी फसल अच्छी होगी। सभी भाग्य का खेल होता है। वर्षा के लिये लोग कितना तरसते हैं यह निम्न दोहे से ज्ञात होता है —

सौ साढिया, सौ करहला, पूत निपूती होय।
मेहडला वूठा भला, जे दुखियारण होय॥

अर्थात् जिस औरत के सौ ऊन्ट और सौ ऊन्टनियां और सभी सन्तानें भी ज्यादा वर्षा से नष्ट हो जावे तब भी वह सब प्रकार के कष्ट उठाते हुए भी वर्षा का स्वागत ही करती है।

राजस्थान का पूर्वी भाग उपजाऊ है और पानी की बहुतायत होने से वहा काफी क्षेत्रो मे दो फसलें होती है। इस भाग मे पानी गहरा नही है। इस क्षेत्र मे नदी, नाले, तालाब व बान्ध अधिक है। दक्षिणी राजस्थान मे भीलो मे खेती करने का एक रिवाज है जिसे वालर या वल्ला कहते है। ये लोग खेती के लिये जगल के वृक्ष व झाडियो को काटकर मैदान साफ करते है और उसकी राख का खाद बनाकर खेती करते है। यह रिवाज हानिकारक होने से सिरोही, डूगरपुर आदि राज्यो मे बन्द कर दिया गया है।

राजस्थान की मुख्य पैदावार गेहूँ, जौ, मक्की, ज्वार, बाजरा, मूग, मोठ, चना, गवार, चावल, तिल, अलसी, सरसों, कपास, जीरा, रुई, तम्बाकू, अफीम, गन्ना, मिर्च, मैथी और धनिया है।[1] सिचाई के लिहाज से जयपुर, भरतपुर, किशनगढ, अलवर, कोटा व शाहपुरा की रियासते उन्नति पर है। पूर्वी भाग मे तथा पश्चिमी भाग मे सिरोही व जोधपुर राज्य के कुछ परगनो (सिवाना, जालोर, बाली, जसवतपुरा) मे कुए बहुत है। पानी अरहट और ढेकली (चोच) से सींचा जाता है।

सिचाई

छपने के अकाल (सन् 1899-1900) के समय यह महसूस किया गया कि सिचाई की सुविधायें होना अत्यन्त आवश्यक है। अत विभिन्न रियासतो मे आर्थिक स्थिति के अनुसार सिचाई कार्य हाथ मे लिये गये। कई राज्यो मे सिचाई के बान्ध बनाये गये व नहरें निकाली गयी। इनमे सबसे महत्वपूर्ण कार्य बीकानेर नरेश महाराजा गगासिह ने किया। उनके द्वारा लाई गई नहर गगानहर कहलाई। इस नहर से पूरे साल भर सिचाई होती है। जोधपुर राज्य मे सरदार समद, एडवर्ड समन्द, चोपडा बाध, सादडी बाध, मेली बाध आदि तैयार किये गये। कोटा राज्य मे अटरू से मागरोल तक चम्बल, कालीसिध व पार्वती नदियो से नहरें निकाल कर सिचाई की जाती है। अन्य राज्यो मे काफी मात्रा मे सिचाई के कुए खुदवाये गये हैं। ऐसे राज्य है— अलवर, जयपुर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, उदयपुर, बून्दी व सिरोही। ज्यादातर राज्यो ने काश्तकारो को कुए बनाने

1. राजस्थान की 662 लाख एकड कृषि योग्य भूमि मे से लगभग 375 लाख एकड भूमि मे खेती होती है। अर्थात् पिछले 25 वर्षों मे 50 प्रतिशत भूमि पर कास्त बढा है। लगभग 33 प्रतिशत कृषि क्षेत्र मे विभिन्न स्रोतों से सिच ई होती है। इससे अब खाद्यान्न उत्पादन 70 लाख टन हो गया है।

हेतु ऋण दिये गये लेकिन काश्तकारो ने इन ऋणो का कम ही लाभ उठाया है। सन् 1921 ई० तक केवल 8,31,261 बीघा मे ही सिचाई होने लगी है। जागीरी क्षेत्रो मे तो नाम मात्र की सिंचाई होती है। जागीरदार कुए खोदने के लिये काश्तकारो को प्रोत्साहित हो नही करते है। काश्तकारो को भी जागीरदारो पर कम विश्वास रहता है क्योकि पता नही कब वे उनसे कुए छुडवा लेव। आवश्यकता इस बात की है कि नदियो पर छोटे छोटे बाध बनाये जाव ताकि उनसे सिंचाई हो सके।

मालगुजारी व भूमि के अधिकार

राजस्थान मे भूमि की श्रेणिया— खालसा, जागीर, जूना जागीर, ईनाम, भोम, भोमीचारा, पसायता, माफी, सासण (धर्मादा) आदि है।[1] खालसा के अलावा सभी प्रकार की भूमिया जागीरदारी प्रथा के अन्तर्गत मानी जा सकती है। अत मोटे रूप से भूमि को दो वर्गा मे खालसा व जागीर के नाम से बाट सकते हैं। राज्य के सीधे अधिकार की भूमि खालसा कहलाती है और जागीर की भूमि दरबार से दी हुई उन लो।। के अधिकार मे होती है जिसके लिये वे मालगुजारी व लगान राज्यो को देते है। खालसा व जागीर की सब किस्म की जमीन पर स्वामित्व नरेश का होना है। केवल कब्जा और उसकी पैदावार को लेने का अधिकार जागीरदार को होता है। जागीर वश परम्परा के लिये होती है और जब उस जागीर का प्राप्त करने वाले के वश मे कोई होता है तब तक जब्त नही होती है। किसी सगीन अपराध या राजविद्रोह के अपराध मे जागीरदार की जागीर जब्त की जा

---

1 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जब नवीन राजस्थान प्रान्त का निर्माण हुआ तब राजस्थान मे कुल 16 573 गाव खालसा के तथा 18 075 गाव जागीरों के थे जिनका क्षेत्रफल क्रमश 44,458 व 87,485 वर्गमील था। जागीरो के कुछ गाव पूर्णतया जागीरदारों के ही कब्जे मे थे लेकिन कुछ गावों क भाग ही खालसा व जागीर मे थे। जागीरो मे विभिन्न नस्ओं की निम्न प्रकार की भूमिदा भी आती थी- जागीर के अलावा इस्तमरार, चाकोटी, तनखा, सूना, मामला ईनाम लालजी खानगी, मलूका, ठीकाना, (धाधपुर मे) खानपान, खिदमत जायदाद सोगा मुआफी टाकेदार, भोम, सलामी चाकराना पितरोटी राजवी, ताजीमी, भोगता, हजूरी, सासण, मुत्सद्दी, खवास पासवान, रिसाला मर्जीदान पट्टा, गुजारा उदक, जूना-जागीर, भोमीचारा, पसायता बाढ दुम्बा, डोली, मिलक पुण्यार्थ, धर्मादा ईजारा, इस्तमरार, बापोती व बलमीस।

सकती है। जागीरदार के मरने पर नये जागीरदार को नजराना या उत्तराधिकारी फीस (हुक्मनामा) देकर नया पट्टा कराना होता है। जागीर की मालगुजारी जागीरदार ही लेता है। वह राज्य का केवल नियत खिराज देना है।[1]

इनाम, माफी और सासण भूमि के धारण करने वालों को कोई कर, आदि नहीं देना पड़ता है। उनको कोई लगान भी नहीं देना होता है। पसायतादार को भूमि भोगने के एवज में राज्य या गाव की जनसेवा करनी पड़ती है।

ब्रिटिश राज्य की स्थापना से पूर्व रियासतों में जागीरदारों की ज्यादा ही चलती थी। नरेश उन्हें अपनी सत्ता के स्तम्भ मानते थे और राज-काज बहुत कुछ उनके आधीन रहता था। प्राय युद्ध के समय जागीर-

---

1 जागीरो मे जागीरदारों के मालिकाना अधिकार नहीं होते थे। जागीरदार राज्य व काश्तकार के बीच एक मध्यस्थ होता था जो काश्तकारो से लगान वसूल करता था। राज्य जागीरदार को कुछ निश्चित रकम क ऐवजाने मे जागीर दे देता था लेकिन वह रकम वर्षों तक बदलती नहीं थी। इसके विपरीत जागीरदार काश्तकार से मनमाना लगान वसूल करता था तथा अपने निजी काम मे लेता रहता था। राज्य को दिये जाने वाले खिराज (रकम) से उस वसूली का कोई सम्बन्ध नहीं था। जागीरदार काश्तकारों से उपज का हिस्सा लेते थे जो आधे से आठवा हिस्से तक होता था। लेकिन ज्यादातर जागीरदार आधा हिस्सा ही लेते थे। खालसा गावो मे ऐसी बात नहीं थी। यहा सामान्यत उपज क पाचवें से आठवें हिस्से तक लगान लिया जाता था। काश्तकारो से इस लगान क अलावा लागबाग भी ली जाती थी। य लागबागें इतनी थी कि काश्तकार देते देते तग आ जाया करता था। ये लागबागें न केवल जागीर के गावो मे बल्कि खालसा क गावो भी ली जाती थी। जो लोग लगान आदि नहीं देते थे उन्हें काठ' मे डाल दिया जाता था या और क्रूर तरीकों से परेशान किया जाता था। एक प्रकार से काश्तकारों से लाटे नहीं लिये जाकर उन्हें लूटा जाता था। काश्तकारों को जब चाहे तब उनके खेतो या कुओ से बेदखल कर दिया जाता था। कई बार तो काश्तकारों को जो जागीरदार से बना कर नहीं रखते थे गाव तक छोडना पडता था।

इन अत्याचारो को देखकर ही नवीन राजस्थान प्रात का निर्माण हो जाने पर जागीरों का पुनर्ग्रहण किया गया। लगभग 2,36 623 जागीरों का पुनर्ग्रहण कर दिया गया है। इनके अलावा जमीदारियो और बीसवेदारियों के 4 870 गाव भी पुनर्ग्रहित किये गये। जमीदारियों एव बीसवेदारियो के ज्यादातर गाव (3 543) अलवर व भरतपुर जिलों मे और 1,146 गाव गगानगर जिलों मे थे।

दार ही उच्च सैनिक अधिकारी बनाये जाते थे। इस कारण जागीरदार बहुत ही शक्तिशाली बन गये। उन्होने अपने प्रभाव से राजाओं को अपने हाथ की कठपुतली बना दिया। राजाओं का अंग्रेजो से संधि करने का यह भी एक कारण था। सन् 1818 ई० के बाद से जागीरदारो की महत्ता क्षीण होने लगी। संधियो के अनुसार अंग्रेजी सरकार ने रियासतो की बाहरी शत्रुओं से रक्षा करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और भीतरी उपद्रवो को शान्त करने भी सहायता देने का वचन दिया। नरेश का नि सन्तान स्वर्गवास होने पर राज सिंहासन का उत्तराधिकारी कौन हो, इसका निर्णय भी अंग्रेज सरकार ने अपने अधिकार मे ले लिया। ऐसी दशा मे जागीरदार का महत्व काफी कम हो गया। अस्तु इस समय जागीरदार रियासत की शोभा मात्र रह गये परन्तु व अब भी गांवा में काफी प्रभावशाली माने जात है।[1]

खालसा या जागीरी भूमि मे किसानों का बापी पट्ट दिये जाते है जिससे वे लोग जमीन पर वश परम्परागत काबिज रह सकते है और एक बन्दोबस्त से दूसरे बन्दोबस्त तक यानि 20 वर्ष तक बिना किसी खास कारण स्तीफा नही दे सकते है। जोधपुर राज्य मे अकाल या किसी और कारण से बापीदार अपनी जमीन छोडकर बाहर चला जाता है तो उसका अधिकार उसपर पाच वर्ष तक बना रहता है। बाद मे उसके अधिकार छीन जाते हैं और जमीन राज्य की हो जाती है। यदि बापीदार पाच वर्ष के भीतर वापस आ जाता है तो उससे उन वर्षो का बकाया लगान नही लिया जाता है। बापी की भूमि परदेशियो, ब्राह्मणो, राजपूतो, ब्रह्मभट्टो

1 राजस्थान में जागीरदारो जमींदारों व इस्तमरारो के हट जाने के बाद गाव मे उनका स्थान कुछ नये पूंजीपतियो व राजन ति ों ने ले लिया है। इन्होंने गांवो के अच्छे उपजाऊ भू खण्डों पर येन केन प्रकरेण कब्जा कर लिया है और मन माने ढग से काश्तकारों का शोषण करके मुनाफा कमाने लगे हैं। बड़े बड़े भू-खण्ड इनके कब्जे मे आ गये हैं। भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों ने इन्हे कम ही प्रभावित किया है। भूमि की अधिकतम सीमा कानून लागू होने के पहले ही इन पूंजीपतियो व राजनीतिज्ञों ने अपनी भूमि अपने ही सम्बन्धियो व नोकरों मे इस प्रकार बाट दी कि यह कानून उनको प्रभावित ही नहीं कर सके। इस प्रकार साधारण काश्तकार कम ही लाभान्वित हुए हैं। साधारण किसान आर्थिक स्थिति अच्छी न होने, सिचाई की सुविधाऐ कम होने, मौसम पर ज्यादा निर्भर रहने तथा अशिक्षित होने से भी अपनी सामाजिक व आर्थिक स्थिति ठीक नहीं कर सका है।

और चारणों को बेचने, गिरवी रखने या दे देने की मनाही है। वह किसानों को ही हस्तान्तरित कर सकता है।

इन किसानों से मालगुजारी बटाई (लटाई) या बीघोडी के रूप में वसूली की जाती है। बटाई का अर्थ है पैदावार को बाँटकर राज्य द्वारा हिस्सा लिया जाना और बीघोडी में अर्थ फी बीघा जमीन पर नकद लगान लेना है। यह प्रणाली सर्वत्र समान नहीं पाई जाती है। गाव की आर्थिक दशा देखते हुए कहीं पर रबी (उनालू) फसल में आधा से चौथाई तक या पाचवें हिस्से तक लगान (मालगुजारी) ली जाती है और खरीफ (सियालू) फसल पर तिहाई से छठा हिस्सा तक लगान ली जाती है। अब अधिकतर रिवाज बीघोडी वसूल करने का चल पड़ा है। ज्यादातर जागीरदार लटाई ही करते हैं।

लाग बाग

राज्य सरकारों के अलावा जागीरों की आय का मुख्य स्रोत मालगुजारी होता है। मालगुजारी मनमाने ढंग से काश्तकारों द्वारा उत्पन्न फसल के आठवें हिस्से से लगाकर आधे हिस्से तक ली जाती है। इसके अलावा लागबागें भी वसूल की जाती हैं। लाग बाग एक अस्थायी एवम् अनिश्चित कर होता है जो अपनी प्रजा पर कुछ विशेष परिस्थितियों में कभी लगाया गया था अथवा स्वयं प्रजा ने राज्य की आवश्यकताओं को समझकर देना स्वीकार किया था। इनमें से कुछ को प्रजा ने अपने राजा या जागीरदार की इज्जत बढ़ाने या शिष्टाचार के नाते अपनी मरजी से देना आरम्भ कर दिया था लेकिन इनको राजाओं व जागीरदारों ने स्थाई रूप देकर वसूल करना चालू कर दिया। लाग बागें सभी गावों में एक समान नहीं होती हैं। किसी गाव में कोई लाग होता है तो दूसरे गाव में और कोई लाग होती है। इनकी दर भी भिन्न भिन्न होती है। ये दर भी घटती बढ़ती रहती है। ये लाग बाग प्राचीन काल में उत्पादित वस्तु के रूप में वसूल की जाती थी लेकिन अब इनको रकम निश्चित कर दी गई है।[1]

इन लाग बागों का लगाये जाने के अनेक तरीके थे। एक मनोरंजक उदाहरण है कि एक जागीरदार अपनी घोड़ी को गाव के चारों ओर दौड़ा रहा था। अकस्मात् एक चट्टान पर बने हुए चबूतरे से टकराकर घोड़ी

1. स्वतन्त्रता पूर्वकाल में किसान आन्दोलनों से तंग आकर विभिन्न रियासतों ने लाग बागें बन्द कर दी। नये राजस्व कानून के अन्तर्गत अब लागबाग लेना पूर्णतया वर्जित है।

गिर पडी और ठाकुर साहब भी गिर गये। घोडी चट्टान पर गिरने के कारण वही मर गयी। इस दुर्घटना का समाचार सुनकर गाव के बहुत से निवासी एकत्रित हो गये। ठाकुर साहब के भी पीडा हो रही थी। सभलने पर भी बार-बार उनके मुँह से कहराने का शब्द निकल ही जाता था। लोगो ने समझा, घोडी के मरने का ठाकुर साहब को बहुत शोक हुआ है, अत समझाना आरम्भ किया। परन्तु घोडी का शोक हो तब तो समझाने से शाति हो। यहाँ तो बात पीडा की थी। अन्त मे धनाढ्य सेठो ने कहा कि आप एक घोडी का इतना शोक क्यो करते है, ऐसी घोडी जितने मे मिले आज ही दूसरी खरीद लीजिए। ठाकुर ने कहा इतने रुपये कहा है ? लोगो ने "राजभक्ति" के जोश मे आकर कह दिया हम देंगे। उसी दिन 500/- रुपये मे घोडी खरीदी गयी और गाव के लोगो ने इस आशा पर 500/ रुपये एकत्रित कर दिये कि जमीन का लगान लेते समय ठाकुर उनके रुपये भर देगा। परन्तु लगान के समय ठाकुर ने जवाब दिया कि तुम्हारे गाँव के चारो ओर दौडते हुए मेरी घोडी मरी। ऐसी दशा मे उसका मूल्य देना तुम्हारा कर्तव्य था।' साल भर व्यतीत होते ही ठाकुर के कर्मचारियो ने "घुड पडी" लाग के 500/- रुपये मागे। लोग शिकायत लेकर ठाकुर के पास पहुँचे। जागीरदार ने कहा वह घोडी हर साल एक बच्चा 500/ रुपये का देती थी इसलिए तुम्हे ये रुपये देने ही पडेगे। यदि न दोगे तो तुम्हारे लिए काठ तैयार है। अन्त मे यह 500/- रुपये वार्षिक की लाग लग ही गयी और वह आज तक वसूल होती है।

कुछ अन्य लाग बाग इस प्रकार है—अखराई – राजकीय कोष मे रकम जमा कराने पर रसीद दी जाती है। उस रकम पर एक रुपया पीछे एक पैसा लिया जाता है।

कासा— शादी या गमी पर ठिकाने को रकम देनी पडती है। यो जागीरदार के यहाँ कम से कम पच्चीस पतल खाना भेजना पडता है।

कामला री ऊन— गडरियो से कम्बल बनाने की लाग ली जाती है या कम्बल ही ली जाती है।

कु ता रो नजरानो— फसल का कु ता करते समय प्रति आसामी एक रुपया जागीरदार द्वारा लिया जाता है।

खरगडो— गढ के लिये गधे की लाग। गढ की मरम्मत आदि के लिए गधे पर ईन्ट, चूना, मिट्टी आदि लाई जाती है। पहले गधे बेगार मे मगाये जाते थे लेकिन अब रकम तय कर दी गयी है।

खरडा—श्रमजीवी जातिया—भावी, मोची छीपा कुम्हार आदि पर यह लाग लगती है। इसकी वसूली राज्य के लिये चौधरी करते हैं।

खीचडी—राज्य की सेना जब किसी गाव मे पडाव डालती थी तब गाव वालो को सेना के नाश्ते के लिए बाजरी की खीचडी तैयार करनी पडती थी। अब खीचडी के नाम पर रकम ली जाती है।

घर गिनती—राज्य प्रत्येक घर के पीछे एक रुपया लेता है।

चराई—बीड, चारागाह या पडत भूमि मे घास कट जाने पर गाव के पशुओ को चराने की छूट दे दी जाती है। इस चराई के लिए जानवर के हिसाब से चार आने से तीन रुपया तक वसूल किया जाता है। यह लाग पूंछडी लाग भी कहलाती है।

घाणीपल्ला—तेली से प्रत्येक घाणी पर एक पल्ला तेल लिया जाता है। कही कही इसकी भी रकम तय कर दी गयी है।

चापा रो परवानो—जगल मे गाय, भैस आदि चराने को ले जाने वाले व्यक्ति को राज्य से परवाना लेना पडता है। इसकी रकम देनी पडती है।

चौधर लाग—काश्तकारा से बिघोडी या हासल वसूल करने के लिए एक चौधरी नियुक्त किया जाता है। इसके लिए काश्तकारो से उपज का चालीसवा हिस्सा लिया जाता है।

जाजम रा रुपया—भूमि के प्रत्येक विक्रय पर यह रकम वसूल की जाती है।

जावणी री घीरत—वर्षा ऋतु मे जागीरदार काश्तकारो से दूध देने वाली गायो और भैसो का एक दिन का दूध दुहाकर घी लेता है।

झाल लाग—सरकारी कर्मचारियो के ऊँटो व घोडो के लिए झाल ली जाती। है वह झाल लाग कहलाती है। इसकी भी रकम वसूल की जाती है।

डाण—एक राज्य से दूसरे राज्य मे माल लाने लेजाने पर यह लाग ली जाती है।

डोरी पूजन—पटवारी प्रत्येक आसामी से कुते का एक रुपया वसूल करता है। कुते के लिए बनायी गयी डोरी की रकम 'डोरी खर्च" अलग वसूल की जाती है।

थाणायत री लाग— किसी गाव मे थाणादार नियुक्त किया जाता है तो उसके नाम से वसूल की जाने वाली लाग ।

नजराना— होली, दशहरा, दीपावली आदि त्योहारो पर जागीरदार या महाराजा को नजर करने को रकम वसूल की जाती है ।

नया बारना रो परवानो— पट्टे मे लिखे दरवाजा के अलावा दरवाजे निकालवाने पर मकान मालिक को परवाना लेना पडता है । इसकी भी रकम देनी पडती है ।

नाता रो परवानो— जिन जातियो की स्त्रिया नाता (पुर्नविवाह) करती है उन्ह राज्य द्वारा परवाना दिया जाता है । इसकी लाग "नाता सुकराना" के नाम से सरकार मे जमा होती है ।

न्यात चवरी— लडकी की शादी पर यह लाग लगती है ।

नूता— जागीरदार अपन परिवार मे मृत्यु या विवाह होन पर गाव वालो को निमन्त्रण भजता है उसकी रकम नूता के नाम से वसूल करता है ।

पाग रो नजरानो— जागीरदार के परिवार म मृत्यु हो जान पर गाव वालो से सामूहिक रूप से रकम वसूल की जाती है ताकि उस रकम से नयी पागें बध सके ।

पावणा पावरा— जागीरदार अपने मेहमानो का खर्चा चलाने के लिए गाव वालो से रकम लेता है ।

पीलागी लाग— सरकारी कर्मचारियो के मकानो के छप्पर पर घास आदि छानी पडती है । इसकी अब रकम ली जाती है ।

पेटिया— यदि कामदार दूरा करने जाता है तो उसकी लाग देनी पडती है जो पेटिया कहलाता है ।

बन्दोले री लाग— जागीरदार के घर मे विवाह होन पर गाव वालो से खर्चा वसूल होता है ।

बीन्द रो पगेलागनो— लडके के विवाह पर यह लाग लगती है ।

भरोती— लागो की कुल रकम खजाने मे जमा होती है तब रकम जमा कराने वाला रसीद काटता है । इस रसीद काटने वाले को भी रकम देनी पडती है जो राज्य कोष म जमा होती है। इसे भरोती लाग कहते हैं।

मलबा—सभी प्रकार के गवाई खर्च के लिए मालगुजारी की लगभग 5 प्रतिशत रकम काश्तकारो से वसूल की जाती है। यह रकम सामान्यत सरकारी कर्मचारियो या ठिकाने के कर्मचारियो के दौरे के समय खर्च की जाती है। यो यह रकम धार्मिक कार्यों, नाडी गुदवाई आदि पर भी खर्च की जाती है।

मापा—एक गाव से दूसरे गाव मे माल लाने व लेजाने पर लगता है। जागीरदार इसका कुछ हिस्सा राज्य को भी देता है। व्यापार पर ली जाने वाली कुछ रकम मापा आढत कहलाती है।

रमाल—जागीरदार काश्तकारो से गुड, काकडी, मिर्च गन्ने का रस, कादा आदि मगवाते हैं।

लिखाई री लाग—काश्तकारो से भूमि अधिकार आदि लिखवान की लाग ली जाती है।

सिगोटी—यह मवेशी के विक्रय पर ली जाती है।

हजूर फरमाईस— महाराजा या जागीरदार आवश्यकतानुसार ऊन, मूँज, पाला चारा आदि गाव से मगा लेता है तब गाव वालो को लाग के रूप से देना पडता है।

हरिया रो बयारा—इस लाग के अन्तर्गत जागीरदार खेत मे खडी फसल से अपने खेत के लिए या अपने जानवरो के लिए गेहूँ जौ चना, रिजका आदि के पूले मगवाते हैं।

हल लाग—जो काश्तकार खेती करता है उससे प्रति घर एक हल के हिसाब से लाग वसूल की जाती है।

इस प्रकार लागबागो की इतनी अधिकता है कि काश्तकार इन्हे देत देते तग आ जाता है। जागीरदार को तो गाव के भ्रमण के लिये कुछ भी खर्च नही करना पडता है। यहा तक की कही कही काश्तकार को जागीरदार के दुर्व्यसनो के लिये भी लाग देनी पडती है यथा पातर लाग—वश्याओ के खर्चे के लिए भट्टी लाग—शराब की भट्टिया निकलवाने के लिए, आदि आदि। ऐसी परिस्थितियो मे काश्तकारो की आर्थिक स्थिति खराब होती है लेकिन जागीरदारो का पतन होना भी अवश्यम्भावी दिखता है। लाग बागो की संख्या सैकडो पर पहुँच रहा है। काश्तकार इनका भुगतान करते करते तग आ गये हैं। वे कर्ज मे डूबते जा रहे हैं। निर्धन ग्रामीण कब और कब तक इन लाग बागो का भार उठाते रहेंगे? यह राज्य सरकारो को विचार करना चाहिये।

अकाल

राजस्थान मे अकाल ज्यादा ही पडते है। इससे यहाँ के लोगो की सामाजिक व आर्थिक दशा काफी गिरी हुई हैं। अकाल सामान्यत वर्षा कम होने या निश्चित समय पर न होने के कारण पडते है। इससे धान, पशुचारा, पानी आदि की कमी आ जाती है। अकाल अपनी विशालता के अनुसार महाभयकर, भयकर, सख्त व कुर्रा कहलाता है। धान ज्यादा महंगा हो जाने पर कुर्रा अकाल कहलाता है। यो अकाल चार प्रकार के होते है— अन्नकाल, जलकाल तृणकाल और त्रिकाल। त्रिकाल मे अन्न, जल व तृण (पशुचारा) तीनो की कमी रहती है। त्रिकाल भी दो प्रकार के होते है — भंरल और गोमार काल।

राजस्थान मे रामायण काल से ही अकाल पडते आये है। इसका मुख्य कारण इस प्रात का वर्षा बरसाने वाली हवाओ के क्षेत्र मे न होना हैं। प्राचीन शिलालेखो, ग्रथो आदि से पता चलता है कि यहा सन् 1250, 1258, 1294, 1320 व 1335 मे भयकर अकाल पडे थे जिनके कारण हजारो मनुष्य व पशु मर गये। हजारो लोगो ने अपने बच्चो को बेच दिया।

पिछली चार शताब्दियो में जो अकाल पडे हैं उनका ब्यौरा इस प्रकार हैं—

महाभयकर अकाल— सन् 1555 1595 1598, 1613, 1660, 1661, 1732, 1783, 1892, 1836, 1868 1899 1939।

भयकर अकाल— सन् 1742 1746 1747 1755, 1770 1788, 1793, 1796, 1819, 1833, 1838, 1848, 1868, 1869, 1877 1891।

सख्त अकाल— सन् 1799, 1850 1853, 1860, 1890, 1915, 1918, 1921, 1925।

कुर्रा अकाल— सन् 1792, 1804, 1888, 1895, 1898, 1901, 1905, 1911, 1928, 1936, 1938।[1]

---

1. पिछले 30 वर्षो मे जो अकाल पडे उनका ब्यौरा इस प्रकार है—
   महा भयकर — 1968, 1969, 1973
   भयकर — 1950 1951, 1952, 1972
   सख्त — 1961, 1963, 1964
   कुर्रा — 1948, 1949, 1953, 1957, 1962, 1966 ?

अकालो मे बहुधा लोग मवेशी लेकर मालवा, सिन्ध[1] व आगरा की ओर चले जाते हैं और वर्षा होने पर वापस लौट आते हैं। रेल और सडकों के बनने से और खान-पान की वस्तुओ का भाव सब जगह एकसा रहने से अकाल की भीषणता का अब अनुभव नही होता है। अकाल के समय राज्यो मे अकाल पीडितो की सहायता हेतु सडकें व बन्धे बनाना, तलाब खुदवाना आदि के राहत कार्य खुल जाते है।[2] अन्नक्षेत्र या गरीब खाने भी धनी लोग अकाल पीडितो के लिये खोल देते है। राजस्थान के पश्चिमी भागो मे यह कहावत है कि हर तीसरे वर्ष एक अकाल पड जाता है। एक दोहा प्रचलित है, जिसमे पश्चिमी राजस्थान मे अकाल कहा कहा अधिकतर पडा करता है, उसका वर्णन किया गया है—

पग पुङ्गल धड कोटडे, बाहु बायडमेर ।
जोयो लादे जोधपुर, ठावो जैसलमेर ।।

अर्थात् अकाल कहता है कि मेरे पैर पुङ्गल (बीकानेर) मे और धड (बीच का हिस्सा) कोटडा (मारवाड) मे और भुजाएँ बाडमेर (मालानी) मे स्थायी रूप से है और कभी कभी तलाश करने पर जोधपुर मे भी मिल जाता हूँ परन्तु जैसलमेर मे मेरा खास ठिकाना है।

---

1 अब तो सिन्ध पाकिस्तान का भाग बन गया है अत उधर पशुओं का जाना बन्द हो गया है।

2 राजस्थान मे अकाल के नाम पर पिछले 22 वर्षों मे लगभग 150 करोड रुपये खर्च किये जा चुके हैं। सन् 1952-53 मे 102 72 लाख रुपये खर्च किये गये और सन् 1970-71 मे 4211 लाख रुपये खर्च किये गये। पिछले 6 वर्षों के खर्च के आकडे इस प्रकार है—

1966-67 मे 1141 98 लाख रुपये
1968-69 मे 1950 00 लाख रुपये
1969-70 मे 1000 00 लाख रुपये
1970 71 मे 4211 00 लाख रुपये
1971-72 मे 893 00 लाख रुपये

सन् 1972-73 मे लगभग 21 000 गाव अकाल ग्रस्त है। मार्च 1973 तक लगभग 1,000 लाख रुपये खर्च किये जा चुके हैं तथा लगभग इतने ही रुपये आगामी 4 महीनों (अप्रेल से जुलाई) मे खर्च किये जायेंगे।

बेहडा— इसकी मीजी बादाम की तरह खाई जाती है। बाहर का छिलका "त्रिफला" अर्थात् हड, बेहडा और आंवला के नाम से सैकडो दवाओ मे काम आता है। फल चैत्र मे लगते है।

महुआ— सूखे हुए फूलो को भून कर या तो रोटी बनाकर या सीधा खाया जाता है। फल कच्चा और पक्का दोनो तरह से खाया जाता है। इसके फूलो से शराब भी निकलती है। दवा के काम मे यह विलायती शराबों की तरह पाचन शक्ति कम न करके शरीर को हानि नही पहुँचाती है। बीजो मे 30 प्रतिशत तेल निकलता है। खली मे खास तरह का विष रहता है और इसका प्रयोग बतौर एमेटीक यानि कै लाने वाली दवा क रुप मे किया जाता है। फल-फुल चैत्र मे लगते हैं।

बबूल— यह सब स्थानो मे मिलता है। इसके फलिया बहुत होती है। उनको उबाल कर तरकारी बनाई जाती है और अकाल क समय इसके पत्ते व फलियाँ भेड बकरी और ऊन्टो का चारा का काम दती है। बबूल के बीज गरीब लोग मामूली अकाल म भी काम म लाते हैं। उनको भून कर खाते है या पीस कर आटे मे मिला कर रोटी बनाते है। बीज स्वादिष्ट होते है।

नीम — इसकी पकी हुई निम्बाली खाई जाती है। यहा के जगली फलो मे यह स्वादिष्ट समझी जाती है और वह खून साफ करन वाली भी है। यह वृक्ष आयुर्वेदिक दवाओ मे बडा काम आता है। इसकी खली खाद के लिये अत्यन्त उपयोगी है और इसको बगीचो मे डाला जाता है। इसका तेल भी निकाला जाता है।

इमली— इसकी खेती भी होती है और जगल म भी पाई जाती है। पक्के फल खाये जाते हैं और बीजो को भून कर खाते है। छाल पीस कर आटे मे मिला कर खाई जाती है। इसस पेट फूल जान का भय रहता है।

फोग — यह सर्वत्र मिलता है। फल और फूल तरकारी क काम मे आते है। इनको पीसकर रोटी भी बनाई जाती है।

करोंदा— फल भादवा मे पकते है। इनकी तरकारी बनती है।

छोटीकाटी—फलो को कूट कर तिनके निकाल दिये जाते है। पीछे पीस कर आटे मे मिला कर रोटी बनाते है। कच्चे फल व डालियाँ उबाल कर तरकारी क काम मे लाते है। वर्षा मे इसमे बेल पैदा होती है।

तसतुम्बा— इसके फल भादो मे पकते हैं और बडे कडवे होते हैं। यह औषधियो मे भी काम आते है। बीज मीठे होते हैं और भोजन के काम आते हैं विशेषकर रेगिस्तान मे पीस कर रोटी बनाई जाती है। वर्षा के बाद पौधा जल जाता है और जड रह जाती है। इसका तेल भी निकाला जाता है।

कौंच— इसके बीज भूने जाते हैं और छिलका उतार कर गूदा खाया जाता है। यह पुष्टिकारक है। आडावला पर्वत की तर घाटिया मे यह बारहो मास रहती है। वर्षा के सिवाय और वक्त मे पत्ते नही रहते हैं।

मुसली सफेद— यह जगल मे प्याज के जैसे पत्तो की पैदा होती है। जड को पीस कर आटे की तरह खाई जाती है। दवा के काम मे भी आती है।

गवारफली— यह बोई भी जाती है और वैसे जगल मे भी उगती है। कच्ची फलियें उबालने पर साग (तरकारी) के काम मे आती हैं। बीज पीसे जाकर आटे मे मिलाये जाते है। फलिय कार्तिक मे पकती है। गवार गोद बनाने के काम भी आता है।

भूरट— यह रेतीले क्षेत्रो की खास घास है। खरीफ की फसल के साथ अनाज की तरह इसको इकट्ठा किया जाता है। अकाल मे गरीब लोगो का सहारा है, बीज मनुष्या का भोजन है और भूसा पशुओं का। मामूली अनाज की तरह पीस कर भी यह काम मे लाया जाता है।

घीयामाटा— यह एक प्रकार का खनिज पदार्थ है। आडावला पहाड और अन्य स्थानो मे यह काफी मात्रा मे पाया जाता है। इसे भी अकाल के समय गरीब लोग खाते हैं।

मुलतानी मिट्टी— यह (मेट) रेतीले भाग का खनिज पदार्थ है। प्राय स्त्रियाँ गर्भावस्था मे इसे खाती हैं।

स्वास्थ्य तथा चिकित्सा

आबहवा की दृष्टि से राजस्थान भारत के स्वास्थ्यवर्धक भागो मे माना जाता है। राजस्थान के पश्चिमी भाग मे ठण्ड की मौसम मे अधिक ठण्ड और गर्मी मे अधिक गर्मी पडती है और तब लू (गर्म हवा) भी बहुत चला करती है। इस भाग मे रेतीले मैदान और कम वर्षा होने के कारण यहां के लोगो का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। पहाडी भागों मे पानी भारी होने से वहां के लोग इतने स्वस्थ नही होते हैं जितने कि मैदान मे बसने वाले होते हैं। इस प्रदेश के लोगों के लिये सबसे ज्यादा दुखमयी बीमारीयाँ है— ताव (मलेरिया) शीतला व बाला (नारू)। ताव की बीमारी मे हजारो लोग फसल की कटाई के समय सितम्बर व अक्टूबर माह मे खाट पकड लेते हैं और कई बार तो गाव मे फसल काटने वाला ही नही मिलता है। शीतला माता की बीमारी मार्च व अप्रेल मे ज्यादा ही फैलती है। यह बीमारी बच्चों को ज्यादा होता है। इस बीमारी से शरीर पर दाने निकल आते हैं जो बच्चो को कुरुप बना देते हैं। कई बच्चों को अन्धा या पागला बना देती है। राजस्थान मे शुद्ध व मीठे पानी की बडी कमी है।[1] ज्यादातर गावो मे पानी खारा होता है इस कारण लोग तालाबों व नाडो का पानी पीते हैं जिसमे जानवर भी बैठते है और गन्दगी कर देते है। आदमी भी गन्दे पैर लेकर पानी मे चले जाते है। इन कारणो से लोगो के नीचले भागो मे, मुख्यकर पैरो मे बाला (नारू) निकल

1 राजस्थान मे स्वच्छ व मीठा पानी भाग्यशाली ग्रामीण को ही मिलता है। ऐसे भाग्यशाली लोगों के गांव कठिनाई से 10 प्रतिशत होंगे। सामान्यत. लोगों को 4 से 10 किलो मीटर दूर से पानी लाना पड़ता है। पश्चिमी जिलो के ज्यादातर ग्रामीण गर्मी की मौसम मे केवल पीने का पानी सरकारी वाहनो से पी लेते हैं लेकिन नहाने धोने के लिये तो उन्हे वर्षा पर ही निर्भर रहना पडता है। वर्षा ऋतु मे तालाबो व कुओं मे जो कुछ पानी इक्ट्ठा हो जाता है उसको ही बाद के महिनो मे पीने आदि के काम मे लिया जाता है। यह पानी मिट्टि मिश्रित होता है। इस प्रकार इन क्षेत्र के ग्रामीणो का जीवन अत्यन्त कष्टमय होता है।

आता है। इससे लोगो को असह्य पीडा होती है और वे उठ बैठ तक नही सकते है, काम करना तो दूर रहा। गर्मी के दिनो मे रात्रि मे प्रकाश न होने के कारण काफी लोगो को बिच्छु डक मार देते है। इससे काफी लोग परेशान रहते है। कई मर भी जाते है। गावो मे कस्बो मे सफाई की व्यवस्था कम रहती है। अत लोग गन्दगी व बदबू से तग रहते है। किसी भी राज्य के गाव या बडे कस्बो मे नगरपालिका की कौन कहे साधारण प्रकाश और सफाई का प्रबन्ध तथा सडक और औषधालय की व्यवस्था तक नही है। यथा समय औषधि न मिलने से हजारो लोग प्रति वर्ष अकाल मृत्यु से मर जाते है क्योकि अच्छे अस्पताल केवल बडे नगरो या राजधानी मे ही होते है और गाव वालो को नीम हकीम, लाल बुझक्कड के कहने पर या बुखार आदि मे भी कुनेन के बदले झाडे झपट्टे (मन्त्र तन्त्र, डोरेडाडे आदि) पर विश्वास करना पडता है। मृत्यु या महामारी आने पर या तो वे अपने भाग्य को कोसते है अथवा उस विपत्ति को ईश्वर की भेजी हुई समझ कर सहन करते है।[1] नीचे के आकडे आकडो से उन्नत कहलाने वाले राज्यो के सरकारी अस्पतालो की स्थिति ज्ञात होगी।

	जोधपुर	बीकानेर	अलवर
अस्पतालो की सख्या	27	14	10
कितने मनुष्य पर एक	75,000	47,000	70,000
कितने वर्ग मील पर एक	1,400	1,665	400
कितने गांवों पर एक	81	154	107

1. जिस प्रान्तो के लोगो को स्वच्छ पेय जल नहीं मिलता हो, निरन्तर अकाल पडते रहने के कारण खाने का पूरा धान नहीं मिले वहा के लोगो का स्वस्थ रहना कठिन है जहा हवा मे मिट्टी बराबर उडती रहती है वहा के लोगों के पेट मे कितनी मिट्टी पहुँचती होगी यह अनुमान लगाना भी आसान नहीं है। ऐसे लोगों को ईश्वर ही स्वस्थ रखता है। उदाहरणात् नागोर जिले के मकराना पचायत समिति के 46 गावो मे पानी इतना अशुद्ध है कि वहां के लोगो को पानी पीने से शरीर टेढा हो जाता है इस कारण यह 200 वर्ग मील क्षेत्र 'बांका पट्टा' कहलाता है। कई गांवों मे पानी इतना गन्दा होता है कि लोगो को नारू (बाला) निकल जाता है और इस कारण उन्हे महिनों तक बिस्तर मे रहना पडता है। राज्य सरकार ने शुद्ध जल उपलब्ध करने के लिये एक योजना 70 करोड रुपये की बनाई है लेकिन यह कब तक तथा कहां तक सफल होगी, यह सन्देहास्पद है। आगामी 10 वर्षों मे भी यह योजना पूर्ण हो जाये तो जनता अपने को सौभाग्यशाली समझेगी।

यो प्रत्येक गाव व नगर मे हकीम, वैद्य, जर्रे आदि रहते है। इनमे कुछ पढे लिखे व कुशल चिकित्सक होते है लेकिन ज्यादातर अनपढ व नीम हकीम खतरे जान होते है। स्त्रियो के जापे अनपढ व अप्रशिक्षित दाईया कराती है जिनके कारण काफी जच्चाएं एव शिशु अकाल मृत्यु के ग्राम बन जाते है। महिलाओ की चिकित्सा के लिये महिला डाक्टर नाम मात्र की है। राजस्थानी की महिला डाक्टर केवल एक (जोधपुर की डा पार्वती गहलोत) है जिसने सन् 1928 मे डाक्टरी परीक्षा पास की थी। स्पष्ट है कि राजस्थान मे महिलाओ की चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नही है। राज्यो को जनता के स्वास्थ्य व चिकित्सा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

बेगार

इस प्रात की राजनैतिक दशा का तो कहना ही क्या हैं ! यहां की प्रजा बृटिश भारत की प्रजा से बहुत पिछडी हुई हैं। भीरुता, दब्बुपन, अपने अधिकारो के प्रति अज्ञानता और अविद्या आदि अनेक कमिया है। फिर भी यहा बेगूं, बिजोलिया, और नीमूचाणा जैसे भीषण खून रजित काड किये जाये तो आश्चर्य ही क्या हैं ? जहा अंग्रेजी भारत मे बैठ बेगार जैसी प्रथा को हटा दिया गया है वहा राजस्थान मे इसका चलन अभी तक वैसा ही बना हुआ है, अर्थात् यहां की सीधी और निर्धन प्रजा मे भांबी, भील, सरगरा चमार आदि छोटी जातियो से पारिश्रमिक दिये बिना ही काम कराया जाता है। ऐसे बेगारियो की सख्या 18 03 626 हैं अर्थात् कुल जन सख्या मे 18 प्रतिशत से अधिक बेगारी है। जागीरदार लोग नाई, कुम्हार, खाती, जाट, माली, गुजर आदि जातियो के स्त्री पुरुषो मे बिना कुछ एवजाना दिये, काम करवाते हैं और वे इसको अपना जन्म सिद्ध अधिकार मानते है। इस कलकित प्रथा के अनुसार कोई भी राज-कर्मचारी या जागीरदार बिना कुछ दिये या नगण्य मजदूरी पर कुछ जातियो से हर समय और कुछ विशेष अवसरो पर मजदूरी करा सकता है।

प्रत्येक गाव मे प्रति दिन कम से कम दो चार बेगार रहती ही हैं। पटवारी, हवलदार आदि यदि एक से दूसरे गाव जावे तो उनका बस्ता एक बेगारी ही ले जायेगा। यहां तक कि छोटे छोटे कामो के लिए भी वे बेचारे पकडे जाते है। इन लोगो से किस प्रकार बेगार ली जाती है इसकी कुछ बानगी यहां दी जाती हैं—

भांबी (बलाई-मेघवाल) जाति के स्त्री, पुरुष तथा बच्चो से दाना दलाना, घास कटवाना, चमडो के साजो की मरम्मत कराना और जनाने, मरदाने मकानो को गोबर से लीपने-पोतने का काम बिना मूल्य कराया जाता है।

सरगरा जाति के लोग कासीदी करते हैं। विवाह आदि में बाँकिये (तूरी) और थाली भी बजाते है और इस पर भी तुर्रा यह है कि यदि उपस्थित न हो सके तो उन्हे बदले मे दूसरा एवजी मे रखना पडता है।

नाईयो से जागीरदार लोग बिना मजदूरी दिये ही अपने घरों मे रोज दिए जलवाते, भोजन तैयार कराते, कपडे धुलवाते, जूठे बर्तन मँजवाते, रात मे पैर दबवाते और जलसो मे वेश्याओं और भांडो की चाकरी मे मशाल (चिराग) लिये खडे रखवाते है।

इसी प्रकार कुम्हारो से घडे मँगवा कर पानी भरवाया जाता है और कृषक जैसे जाट, माली, सीरवी आदि से बैलगाडी, हल, दूध, दही, घास आदि वस्तुऐं अफसरो का दौरे के समय और जागीरदार की आवश्यकतानुसार ली जाती है। इनकी स्त्रियो की भी बेगार नही छोडा जाता है। उनसे विवाह, गोठ, गुगरी आदि के समय मनो आटा पिसवाया जाता है। लोहारो से और नही तो कैदिया की बेडियाँ बनवाना, पहनाना और निकालने का काम लिया जाता है। मीणो तथा गुजरो से पहरा दिलवाया जाता है। अनपढ ब्राह्मणो से अहलकारो के लिए भोजन बनवाया जाता है और शिक्षितो से पचांग सुनवाने और शांति-पाठ करने का काम लिया जाता हैं। यहा तक कि महाजन (वैश्य) लोग भी इस अमानुषिक बेगार से मुक्त नही है। यहा अनेक जातियाँ विशेष प्रकार के जाली उजालदान, झरोखे, टोडे आदि रख कर मकान नही बना सकते जिससे उसमें प्रकाश आ सके। वे विशेष प्रकार की सवारी भी नही रख सकते है। यदि किसी जाति में कोई सम्पत्तिशाली हो गया, और वह घोडा गाडी (बग्घी) आदि सवारी रखना चाहे तो वह नही रख सकता है। इनमें से बहुतेरी जातियाँ विशेष प्रकार के आभूषण और कपडे नही पहन सकती है। विवाह गमी आदि के समय विशेष प्रकार भोजन तक नही बना सकती हैं। विवाह के समय प्रत्येक जाति का बींद (दूल्हा) "बींद राजा" कहलाता हैं, परन्तु इन भाग्यहीन जातियो में जन्म लेने के कारण उस समय "राजा" कहलाये जाकर भी वे घोडे पर सवार नही हो सकते है। भांबी, सरगरे तथा मेहतर आदि निम्न जातियो का कहना ही क्या, ये तो पशु योनि से भी गया बीता जीवन

बीताते है। इनको चाँदी के आभूषण तक पहनने नही दिया जाता है पर
कई राज्यो मे अब जागृति होने लगी है और लोग अपने अधिकार समभ
लगे हैं। अदालतो से भी इनके पक्ष मे निर्णय हुए है, जैसे कि जोधप
राज्य के भाँवियो को सोने की मुरकियाँ, कुण्डल कानो मे और गले मे पू
(देव मूर्ति) आदि गहना पहनने का अधिकार है। इस प्रकार निर्णय चौ
कोर्ट जोधपुर का स० 1979 मे हुआ है। लेकिन इस अधिकार का प्रय
बिरले ही कर पाते हैं। बेगार के पक्षपातियो का यह तर्क है कि बेगार
बहुत सी सुविधा हैं और उसके उठ जाने से राजकर्मचारियो को मजदू
सवारी अथवा सामान समय पर न मिल सकेगा। यह तर्क पोचा हैं। ज
पूरी मजदूरी दी जाये तो प्रत्येक वस्तु गरीबों तक को मिल सकती है राज
की तो कौन कहे? वरना पूरा मूल्य देने मे सब तरह का सुभीता रहता
और गरीबो को भी वृथा तग नही होना पडता है। कई राज्यो से बेग
उठा दी गई हैं और कही असल मजदू ी से पौनी, आधी, कही नाम मा
की स्थिर कर दी गई है परन्तु यह भी प्राय गरीब बेगारियों के पल
न पकडकर स्वार्थी अहलकारो को जेब मे ही चला जाता है। इससे बढक
दुख की क्या बात होगी। बहुधा किराया किये हुए सवारियो को उत
कर बेगारियो का बैल, ऊँट या घोडे के सहित ले जाया जाता है। भोज
आदि दिये बिना रात-दिन उनके काम लिया जाता है और चलते सम
लाल-लाल आँखे दिखा कर टरका दिया जाता है। भारत सरकार का ध्य
इस ओर कौन दिलावे। लाट साहब की स्पेशल ट्रेन किसी राज्य मे आ
है या किसी राज्य मे होकर गुजरती है, तब उन्हे अपनी सुथरी सेज प
पडे हुए क्या पता चल सकता है कि पौष की अर्ध रात्रि का ठण्ड अथव
ज्येष्ठ की कडाके की धूप मे रेल की पटरी के दोनों ओर तार के प्रत्ये
खम्भे के पास कोई प्राणी उनकी रक्षा के लिये खडा है और उसे इस का
का कुछ भी मूल्य नही मिलेगा।

होली, दीवाली, वर्ष-गाँठ आदि के दिन सब महाजन पचो को इक
होकर मजरे के लिए राज्य या जागीर की कचहरी मे जाना पडता है औ
पचायत की ओर से कुछ भट देनी पडती है। दूसरी कौमो को भी ऐसा
करना पडता है। जा ीरदार या अफसर आने वालो की अमल की मनवा
किया करते है।

दास प्रथा

बेगार और लाग-बाग की तरह कलंकित दास-प्रथा भी राजस्थान मे प्रचलित है। यद्यपि ससार भर से गुलामी उठ गई है, किन्तु यहा इसका अभी भी बोलबाला है। यहा बीसवी सदी मे भी मनुष्यो का एक समुदाय (1,61,735 स्त्री, पुरुष) गुलाम बना कर रक्खा गया है। इस समुदाय के अनेक जातिवाचक नाम हैं—दरोगा, चाकर, हजूरो, रावणा, खवास, चेला, गोला, ढीकडिया, खानजादा आदि। इनकी बहिन बेटिया आदि भी जागीरदार की ओर से दहेज मे दे दी जाती है। यही नही वे आपस मे क्रय-विक्रय भी कर दिये जाते है। इनका नाममात्र के लिए विवाह कर दिया जाता है, परन्तु वे पति-पत्नि की भाँति नही रह सकते है। उन्हें बहुत थोडा और साधारण अन्न-वस्त्र दिया जाता है। उनकी स्त्रियो अथवा पुरुषो का कोई आदर नही किया जाता है। उन्हे उच्छिष्ट भोजन करना पडता है और पाखाने के बर्तन उठाना, कपडे धोना तथा बर्तन माँजना आदि सभी कार्य करने पडते है। उनको अपने स्वामियो की सेवा मे दिन-रात उपस्थित रहना पडता है। थोडी सी त्रुटि पर गाली गलौज और मार-पीट सहन करना उनके लिये साधारण सी बात है। जागीरो और रियासतो मे होने वाले गुप्त षड़यन्त्रो और हत्याकाण्डो के लिये यही लोग सुलभ अस्त्र है। इनकी इतनी पतित अवस्था हो गयी है कि न वे इससे मुक्त होने की इच्छा ही करते हैं और नहीं हो सकते है क्योकि परस्पर रियासतो मे ही अपने गुलाम को मालिक बिना कानूनी दिक्कतो के ही पकडवा लेते है। जो लोग रियासतो मे से भाग कर अंग्रेजी इलाके मे चले जाते है वहाँ से चोरी आदि के अपराध लगाकर उन्हे पकडवा कर वापस बुलवा लिया जाता है। अंग्रेज अधिकारी वास्तविक स्थिति मे आँख मीच कर एक्स्ट्रडिशन प्रत्यावर्तन कानून की आड मे उन्हे उनके स्वामियो के हवाले कर देते है। वहा वापस पहुँचने पर उनके साथ जो व्यवहार होता है वह पाठक स्वय जान ले। इन बातो का परिणाम यह हुआ कि यह समुदाय स्वाभिमान से सर्वथा ही हाथ धो बैठा है। निराश होकर ये लोग यह समझ बैठे है कि हम इसी हेतु उत्पन्न हुए हैं।

इधर इनके स्वामियो का ध्यान अपने स्वार्थ निकलते रहने मे इनकी दीन-हीन दशा की ओर बहुत कम जाता है। क्या हुआ यदि राजपूत जागीरदारो मे से कुछ नई रोशनी के जागीरदार जबानी जमा खर्च बतलाते या कुप्रथाओ पर नेम देते हुए इस 'दास प्रथा" की बुराईयां बता देवें।

जैसा कि जयपुर राज्य के सुप्रसिद्ध विद्वान जागीरदार ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी. ए खाररियावास ने इस कलंकित दास-प्रथा का घोर विरोध करते कहा है —

"दहेज के साथ दास-दासियाँ भी दी जाय, इस प्रथा से लाभ तो केवल नौकरी या सुभिता का है, परन्तु हानियाँ बहुत हैं। दास दासियो को रखना और उन पर यहाँ तक अधिकार रखना कि उनको दायजे मे दे देना एक तरह की गुलाम-प्रथा है। अब गुलाम-प्रथा लगभग समस्त ससार से उठती चली जा रही है। जो घर मे दूसरो को गुलाम रखता है, उसको भी दूसरो की गुलामी करनी पडती है।"*

इस दरोगा जाति का भाग्य अब आशातीत प्रतीत होता है, क्योकि नैपाल सम्राट ने जिस प्रकार दास प्रथा का अन्त कर दिया है वैसे ही राजस्थान मे भी कुछ नरेश अग्रसर हुए हैं जिन्होने अपने राज्य मे दास-प्रथा हटाने के लिए कानून बनाये हैं। जोधपुर के नवयुवक महाराजा द्वारा जोधपुर स्टेट कौन्सिल के सन् 1916 ई० की 11 जुलाई के प्रस्ताव स० 11 के रूप मे एक राजनियम बना दिया गया था, जिसके अनुसार ठाकुर अपने यहाँ के दरोगो (रावणो) और उनकी स्त्रियो एव सन्तान से उनकी इच्छा के विरूद्ध न केवल काम ही ले सकते थे, वरन् जबरदस्ती दहेज तक मे दे सकते थे, वह बन्धन अब किसी जागीरदार द्वारा इस समुदाय पर बलात् नही लगाये जा सकते है। अपनी इच्छा से दरोगे जागीरदार के यहाँ रह तो सकते है। ऐसी आज्ञा के लिए जोधपुर महाराजा धन्यवाद और कृतज्ञता के पात्र है। साथ ही आशा की जाती है कि राजस्थान के अन्य राजा, महाराजा व उदार जागीरदार भी समय की गति को देखते हुए अपने यहाँ की इस निन्दनीय दासप्रथा को उठा कर प्रजा के एक समूह को सुखी व स्वच्छन्दतापूर्वक विकास करने का अवसर प्रदान करेंगे।

---

*देखो राजस्थान क्षत्रिय महासभा, अजमेर मुख्य पत्र, भाग 3, अक 8, पृष्ठ 3, सन 1926 ई०

उपसंहार

सारांश यह है कि राजस्थान की सामाजिक स्थिति अभी परिवर्तन ले रही है। कई शक्तियां और कई प्रभाव भिन्न भिन्न रूप से कार्य कर रहे है। इसी प्रकार की ब्रिटिश भारत की राजनैतिक स्थिति है। राजनैतिक जागृति के लिए तो यहा सवाल ही नही उठ सकता क्योंकि यहा अनेक रियासतो मे आज भी थाने और तहसीले नीलाम किये जाते है। राज्य कर्मचारियो को जबान ही यहा कानून है। चाहे जिस मनुष्य को चाहे जिस अपराध मे चाहे जैसी सजा दे देना यहाँ साधारण बात है। ऐसे ही महाराजा या उनके मन्त्री कोई आज्ञा निकाल दे, किसी बात को जुर्म करार दे देवे, उसकी सजा तय कर दे और किसी को न्यायाधीश बना दे, बिना मुकदमा चलाये किसी को देश निकाला या कैद की सजा देदे — यह उनके बायें हाथ का खेल है। यहाँ न तो छापाखाना है और न समाचार-पत्र न तो इन्हे चलाने की आज्ञा आसानी से दी जाती है और न स्पष्ट बोलने व लिखने की छूट है। साधारण राजनैतिक सभाएं करने तक को स्वतन्त्रता नही है। न यहा कोई निश्चित कानून है। जहाँ है वहाँ उनको बनाने मे उन लोगो का कोई हाथ नही है जिन पर वे लागू किये जाते है। यह भी नही कि उन कानूनो का सबके द्वारा समान रूप से पालन होता हो। तर्क से, न्याय से और कानून से सिद्ध बातें सत्ता और धन के लिहाज से झूठी करार दे दी जाती है। प्राय. ऐसा देखा जाता है कि कभी कभी जिन बातो पर प्रजाजन को कठोर दण्ड दिया जाता है, उन्ही मे राज्य कर्मचारियो को साफ छोड दिया जाता है। उनकी सिफारिश से ही न्यायालयो के फैसले बदल दिये जाते है। लोग जान बूझ कर अज्ञानान्धकार मे डूबे हुए है और अपने जन्मसिद्ध अधिकारो की ओर से सर्वथा अनजान रक्खे जाते हैं। जो थोड़े बहुत लोग अपने ऊपर होने वाले अन्याय, अत्याचार आदि को समझते भी है वे शासको के भय से चुप हो रहते है।[1]

1. यह लेख सन् 1929 मे लिखा गया था। तब लेखक श्री जगदीशसिंहजी गहलोत मारवाड़ राज्य की सेवा मे थे। अत. राजस्थान और विशेषकर भारत मे चलने वाले राजनैतिक आन्दोलनों के पक्ष मे वह स्पष्ट रूप से नहीं लिख सकें लेकिन इन पंक्तियो से स्पष्ट हो जाता है कि वह इन राजनैतिक आन्दोलनो के पक्ष मे थे तथा राजनैतिक कार्यकर्ताओं से सहानुभूति रखते थे। इसी कारण राजस्थान के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता एव स्वतन्त्रता सेनानी विजयसिंह पथिक, जयनारायण व्यास, अचलेश्वर प्रसाद शर्मा, चांदकरण शारदा, भवरलाल सर्राफ आदि उनके अभिन्न मित्र थे और उनसे राजनैतिक गतिविधियों के बारे मे बराबर विचार विमर्श करते रहते थे।

अब लोगो मे धीरे धीरे आत्म-बल बढ रहा है। वे अपने अधिकारो को पहचानने लगे है। वे अपने अधिकारो के लिए गिरफ्तार होना, जेल जाना, दण्ड पाना कोई नई बात नही समझने लगे है क्योकि उनके प्राचीन इतिहासो मे महान पुरुषो का भी अन्यायी द्वारा दण्डित होने के उल्लेख मिलते है। रामदूत हनुमान का राक्षस पुरी (लका) मे सीता देवी को खोज मे जाना और वहा गिरफ्तार होना तथा राक्षसो (दुष्टो) द्वारा अनेक प्रकार से दण्डित होना, यही बताता है कि अन्यायियो द्वारा धर्मात्मा पुरुषो को कष्ट दिया ही जाता है। श्री कृष्ण के पिता और माता को अन्यायी कस द्वारा वर्षो जेल मे रखा गया और वही श्री कृष्ण का जन्म भी हुआ। यदि पाप के कारण या ससार के अपकार के कारण जेल जाना हो तो वह नर्क है, किन्तु जो परोपकार के लिए और धर्म, देश व जाति के लिए जेल जाते है, उनको वह स्वर्ग के समान ही प्रतीत होता है और वे शान्त चित्त से उसको तपोभूमि मानते है, जैसा कि अग्रेज कवि ने कहा है —

"पत्थर की दीवारो से कैदखाना नही बनता है। लोहे के सीकचो से केवल पीजरा बनता है। लेकिन दोष रहित तथा शान्ति प्रिय व्यक्ति बन्दीगृह को भी तपोभूमि मानते हैं।"

नि सन्देह स्वदेश-प्रेम प्राणी का स्वभाविक धर्म है। यदि उसकी रक्षा के लिए शरीर को किसी प्रकार का दु ख हो तो वह दु ख नही, किन्तु सच्चा सुख है।

सामान्यत जनसाधारण की पहुँच अपने राजाओ तक नही होती है जिससे कि वे अपनी दु ख की कहानी अपने भाग्य विधाताओ को सुना सके। इसका कारण यह है कि बहुधा नरेशो के पास स्वार्थी व खुशामदी कर्मचारी रहते है जो प्रजा के विषय मे इस प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न करते रहते है कि यदि जन साधारण की बुराई स्वय सुनने लगगे तो शासन व्यवस्था न चल सकेगी और उनका रोब दाब प्रजा पर कम हो जायेगा। परन्तु यह धारणा व्यर्थ है, क्योकि भूतपूर्व ग्वालियर महाराजा तथा वर्तमान जोधपुर, झालावाड आदि के कई नरेश अन्य बातो मे चाहे जैसे हो, किन्तु कर्मचारियो के विरुद्ध प्रजा की शिकायतो पर विशेष ध्यान देते है। ऐसा करने से उनके मार्ग मे कोई कठिनाई कभी आती नही देखी सुनी गयी। कोटा, झालावाड, प्रतापगढ और कई अन्य उन्नति प्रिय राज्यो के नरेश सर्व-साधारण से भी मिलते जुलते है, फिर भी शासन-सत्ता व मर्यादा को कोई

हानि नही पहुँचती है वल्कि यह देखा जाता है कि राजा व प्रजा में उत्तरोत्तर प्रेम बढता जाता है और अधिकारियों के अन्याय घटने लगते हैं।

इस प्रकार आज बीसवी शताब्दी में भी अनेक रियासते सोलवी सदी के समान हो पिछडी हुई है। प्रजा अन्ध-विश्वास के कारण एक लाठी से हाँकी जाती है और वह इसी मे सन्तोष मानती है कि विदेशी राज्य से स्वदेशी राज्य अच्छा है परन्तु समय की गति वतला रही है कि प्रजा मे जागृति जिस प्रकार आरम्भ हुई है, वह वन्द नही हो सकती है। मध्य भारत के एजेन्ट टू गवर्नर जनरल वेविल की यही भविष्यवाणी सत्य निकलेगी, कि—

"अब रियासते अलग नही रह सकती है वल्कि (ब्रिटिश भारत के) नवीन सुधारों का उनपर भी प्रभाव पडेगा। अभी तक तो रियासतो के काम पर कोई प्रश्न नही उठाया गया और वह जैसा था मान लिया गया, परन्तु अब वह समय समीप आ रहा है जब प्रत्येक शासक को अपने काम का यथोचित कारण प्रजा को वताना होगा। उसको चाहिये कि वह उनका नेता बने, उन्हे सुधार कर रास्ते पर ले चले, धीरे धीरे उनको अपना अधिक विश्वास पात्र वनाये और काम करने मे उनको अपने साथ रक्खे।"

अब कर्नल वेविल की भविष्यवाणी के पूरे लक्षण दिख रहे है। राजस्थान के कुछ नरेश प्रजा के कष्ट निवारण की ओर ध्यान देने लग गये हैं। वे यह समझ गये हैं कि राजा का कल्याण प्रजा की भलाई मे ही है। प्रत्येक शासक को शासन-कार्य हाथ मे लेते समय वाईसराय लार्ड रीडिंग के ये अनमोल शब्द अपने हृदय मे रख लेना चाहिये जो उन्होने वर्तमान जोधपुर नरेश को पूर्ण राज्याधिकार सौंपते समय कहे थे —

"शासन कार्य अब जैसा कठिन और जटिल हो गया है वैसा कभी नही था। महायुद्ध के पश्चात् से ससार मे वहुत वडा परिवर्तन हुआ है। पुराने विचार जाते रहे है। पुरानी प्रथाओ की कडी आलोचना हो रही है। इस प्रकार की अशान्ति शुभ लक्षण ही है पर परिवर्तन का यह समय शासकों के लिए बडा कठिन है। जितने मे लोगो के पूर्व पुरुष सन्तुष्ट थे उतने मे अब लोग सन्तुष्ट नही होते हैं। आपके सरदार और प्रजाजन भी वर्तमान युग की उन्नति की दौड मे पीछे रहना पसन्द नही करेंगे, समय की गति से न तो आप ही पीछे रह सकेंगे। उनकी उच्चकाक्षाओ पर ध्यान

देना ही उचित होगा। तरह तरह की कठिनाईयां उपस्थित होंगी अवश्य, लेकिन दूरदर्शिता, साहस और बुद्धिमत्ता से उनका सामना करने से वे अपने आप दूर हो जायेगी। यदि आप लोगो के हितों पर सदा दृष्टि रक्खेंगे और न्याय और सहानुभूति से राज्य करेंगे तो भविष्य में आपको जनता से कोई भय नही रहेगा।"

अन्त मे हमारा यह अनुमान है कि एक न एक दिन राजस्थान फिर अपनी प्राचीन शान को प्राप्त होगा और इसके देशी नरेश महाराजा रामचन्द्र के सदृश होगे, जिनके शासनकाल मे प्रजा सब प्रकार से सुखी व सन्तुष्ट होगी, एव राजा प्रजा मे किसी की कोई शिकायत न रहेगी। इस अवस्था को उपस्थित करना राजा व प्रजा दोनो का ही कर्तव्य है, परन्तु इस सम्बन्ध मे राजाओ का उत्तरदायित्व प्रजा की अपेक्षा अधिक है। वह दिन अब दूर नही है कि हम प्रजाजन उस अवसर से लाभ उठावेंगे।[1]

"सर्वे भवन्तु सुखिना सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु ख भाग्भवेत।।"

---

1. लेखक को यह आशा थी कि शीघ्र ही नरेशों की छत्रछाया मे उत्तरदाई शासन स्थापित हो जावेगा और जनता सुखी व समृद्ध हो जावेगी लेकिन राजाओं ने हवा के रुख को नहीं पहचाना। अस्तु जनता व नरेशो के बीच काफी संघर्ष हुए और अन्त मे, भारत [redacted] सन् 1947 मे स्वतन्त्र हो जाने के बाद राजाशाही समाप्त होकर रही। अब न तो राजा है और न सामन्त। लोकतन्त्र की स्थापना हो गई है और जनता समाजवादी समाज के निर्माण की ओर अग्रसर हो गई है। एक अहिंसात्मक क्रांति ने राजाओं और उनके सामन्तो को समाप्त कर दिया और अब एक और क्रांति समाजवादी समाज की स्थापना करके रहेगी।



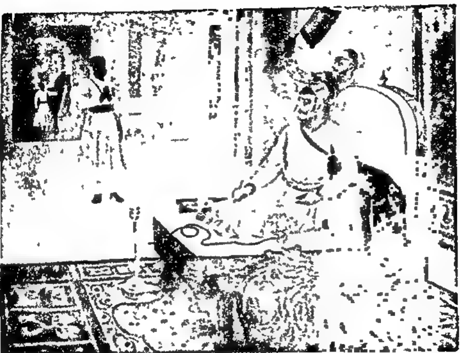


भारत में राजस्थान की स्थिति

राजस्थान
प्रशासनिक
एवं
भौगोलिक
पाकिस्तान
हरियाणा
बीकानेर
चूरू
सीकर
अलवर
उत्तर प्रदेश
पश्चिमी
जैसलमेर
फलोदी
नागौर
मकराना
पूर्वी
औद्योगिक
कृषि
अजमेर
टोंक
जोधपुर
बाड़मेर
पाली
भीलवाड़ा
बूंदी
कोटा
जालोर
उदयपुर
गुजरात
मध्य प्रदेश
प्रशासनिक जिले
भौगोलिक क्षेत्र



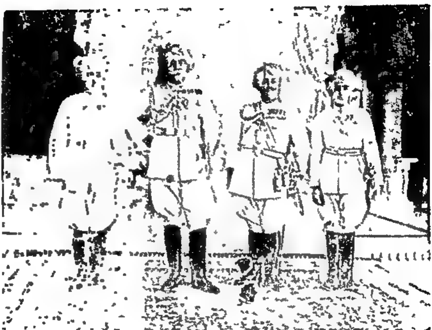
महाराणा प्रताप



सामन्त पृथ्वीराज राठौड़ — सुप्रसिद्ध कवि



सामन्त दुर्गादास राठौड



बीकानेर नरेश — गंगासिंह, शार्दुलसिंह एवं करणीसिंह

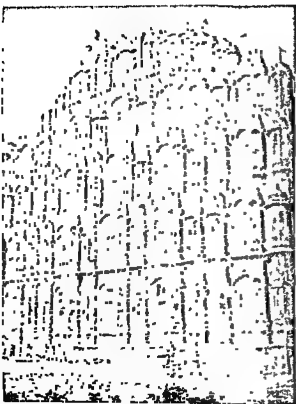


जोधपुर नरेश उम्मेदसिंह

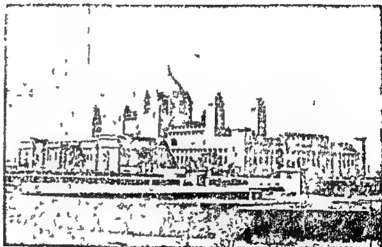


राजमहल — उदयपुर

लालगढ राजमहल — बीकानेर



हवामहल — जयपुर



उम्मेद भवन राजमहल — जोधपुर

डूंगरपुर नरेश — लक्ष्मणसिंह



विजयसिंह पथिक
राजनैतिक एवं क्रांतिकारी नेता



वीर एव धार्मिक महापुरुषों की विथिका,
मण्डोर

सिन्धी मुसलमान

किसान बालायें



ब्राह्मण



डवगर



गाछा





राजपूत सामन्त — एक गोली के सग

खाकी साधु

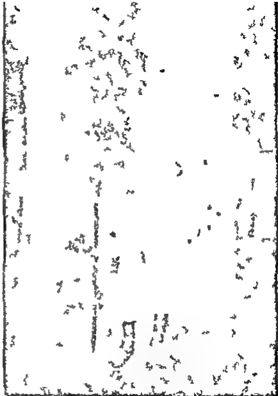
अलखधारी — जोगी



जैन साधु



जैन साधु



यति — जैन साधु

लोहाणा

सारचाल



बिसाती

भील





सनाढ्य ब्राह्मण





महाजन



भील स्त्री

[illegible]

बणजारा

कलाल

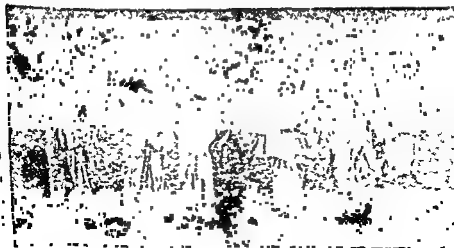


दमामी

जाट

माली

कनफटा साधु — नाथ



भमूरेवाले फकीर



राजपूता की मजलिस



दादुपथी साधु



राठौड राजपूत


अहीर


भाट



नाई

बोहरा — मुसलमान

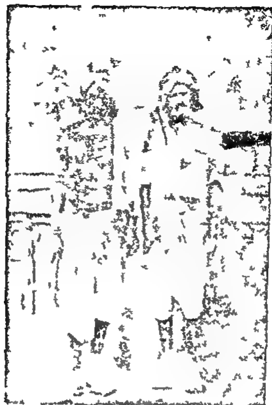
महेश्वरी



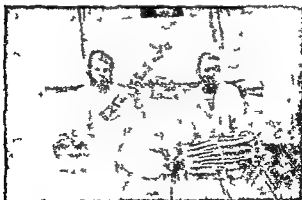
कामड

सोनार

कलवी



जोगी



सेवग

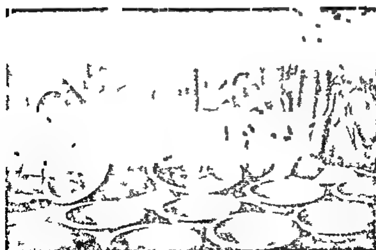


बागों में घूमने चली



शीतला का पूजन

चर्खा कातती महिलाएं



बर्तनों पर चित्रकारी करती महिलाएं

मेघवाल

कालबेलिया



विश्नोई महिला

मेघवाल स्त्री



पानी के इन्तजार में



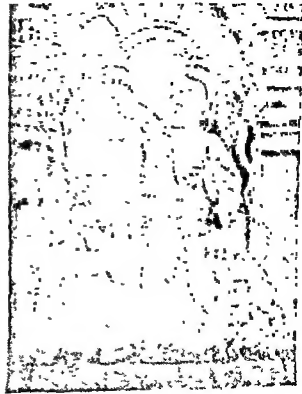
दो वादक



पणिहारी

एक राजकीय जलूस

ढोला मारु



युगल मूर्ति, चौहटण



राग रागिनी — किशनगढ़ शैली